2327
महिला महाविद्यालय

॥ ओ३म् ॥

॥ उपनिषद्भाष्यम् ॥

१५८५
उप....

श्री परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनां

शिष्येण भीमसेन शर्मणा

लोकोपकाराय संस्कृतभाषयाऽर्थ-

भाषया च व्याख्यातम् ॥

भाग १ | ॥ मासिकंपत्रम् ॥ | खण्ड ५

ता० १ अप्रेल वैशाख संवत् १९४७

वार्षिक मूल्य डाक्तव्यय सहित २।)

यह की रजिष्टरी कराई गई है किसी को छापने

का अधिकार नहीं है ॥

॥ देशोपकारक यन्त्रा

॥ मूला

संवत् १

प्रथमवार १०००

ओ३म
गुरु विरजानन्द दण्डी
संदर्भ पुस्तकालय
दयानंद महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र
वर्गीकरण नम्बर 2327
पु. परिग्रहण क्रमांक .....

॥ उपनिषद्भाष्य के नियम ॥

१—इस में टाटिल से भिन्न डिमाई के चार फारम अर्थात् ३२ पृष्ठ व्याख्या प्रत्येक अंक में रहेंगी ॥

२—यह उपनिषद्भाष्य का मासिक अंक तारीख १ दिसम्बर सन् १८८९ से प्रतिमास की पहिली तारीख को निकला करेगा ॥

३—इस का वार्षिक मूल्य सर्वसाधारण की सुगमता के लिये डाकव्यय सहित ३) रक्खा है धर्मात्मा महाराजा वा रईस कृपा दृष्टि से जो कुछ अधिक देंगे वह सहायतामें धन्यवाद का स्वीकार किया जाया करेगा ॥

४—यह पत्र ग्रन्थ कर्त्ता का स्वत्व समझा जाता पर लाभ में से दशांश श्रीमद्दयानन्दविश्वविद्यालय प्रयाग को धर्मार्थ दिया जाया करेगा ॥

५—मूल्य सब से वर्ष के प्रारम्भ में लिया जायगा जो [illegible] नमूना देखने के लिये १ अंक मँगवावेंगे उन को भेजने से नमूने का अंक भेजा जायगा। उपनिषद्भाष्य सम्बन्धी चिट्ठी पत्र वा मनीआर्डर आदि भीमसेन शर्मा सम्पादक आर्यसिद्धान्त— प्रयाग के नाम भेजा करें ॥

भीमसेनशर्म्मा

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तमेवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन।
एतद्वै तत् ॥ ९ ॥

भा०—(सूर्यः) (यतः) यत्कृतनियमात्, यद्दत्तप्रकाशा (च) (उदेति) (यत्र,च) प्रलयावसरे (अस्तम्) (गच्छति) (तम्) ईश्वरम् (सर्वे) (देवाः) सदसद्विवेकांशः प्रकाशादिदिव्यगुणयुक्ताः सूर्यादयः पदार्थाः (अर्पिताः) प्राप्तास्तदाधारास्तिष्ठन्तीति यावत्। (उ) (तत्) ब्रह्म (कश्चन) कश्चिदपि (न) (अत्येति) तन्नियमविरुद्धं कर्त्तुं न शक्नोति (एतद्वैतत्) ॥

भा०—यः सूर्यादिलोकलोकान्तराणामुदयास्तादिनियमानां नियामकः कारणम्। तदाश्रयेणैव चराचरं जगत्स्वस्वनियमान्न विचलति तदेतदेव ब्रह्म विज्ञातव्यं त्वया पृष्टमिति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(सूर्यः) सूर्यलोक (यतः) जिस के नियम वा जिस के दिये प्रकाश से (च) ही (उदेति) उदय को प्राप्त होता (यत्र, च) और प्रलय समय जिस में (अस्तम्) लीन (गच्छति) हो जाता है (तम्) उस ईश्वर को (सर्वे) सब (देवाः) सत् असत् के विवेकी विद्वान् लोग वा प्रकाशादि दिव्य गुणों से युक्त सूर्यादि पदार्थ (अर्पिताः) प्राप्त हैं अर्थात् उस के आधार में स्थित हैं (उ) और (तत्) उस ब्रह्म का (कश्चन) कोई (न,अत्येति) उल्लंघन नहीं कर सकता अर्थात् उस के नियम से विरुद्ध कोई नहीं चल सकता (एतद्वैतत्) इसी ब्रह्म को जानो ॥

भा०—जो सूर्यादि लोक लोकान्तरों के उदय अस्त आदि नियत कामों का नियन्ता कारण है उसी के आश्रय से जड़ चेतन सब जगत् अपने २ नियम से चलायमान नहीं होता उसी ब्रह्म को जानना चाहिये जिस को तुझ नचिकेता ने पूछा था ॥ ९ ॥

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥

अ०—(यत्, एव) ब्रह्म (इह) अस्मिन् जन्मनि स्थ पालकं धारकं प्रकाशकं चास्ति (तत्, अमुत्र) (य अमुत्र) (तत्, अनु, इह) यस्यास्मिञ्जन्मन्यनुकूलं ब्र स्ति तस्य जन्मान्तरेऽपि तादृगेव भवति (यः) पुरुष (इह) ब्रह्मणि (नानेव) भिन्नत्वमिव (पश्यति) (सः (मृत्योः) (मृत्युम्) (आप्नोति) मुहुर्मुहुर्जन्ममरण एवावाप्नोति ॥

भावार्थः—यथा प्राणिनिकायस्थजीवस्यावस्थाभेदेन तस्मिन्नेव कलेवरे जन्मान्तरस्य जात्यन्तरस्य वा प्राप्तौ गुणकर्मस्वभावा भिद्यन्ते न तथा परमात्मनः स तु सदैकरसः कूटस्थः सन् मित्रारिभेदराहित्येन स्वाभाविकशक्त्या सर्वान् पालयति धारयति च जिज्ञासुना तदेकरसं ब्रह्मेत्यनुसन्धेयम्। मोक्षाय घटमानोऽपि यः कश्चित्सदैकरसे ब्रह्मणि परिणामवादादिना नानात्वं स्वीकरोति यद्वाऽस्माकमुपास्यं शुद्धं ब्रह्मान्यमतवादिनां द्वीपान्तरस्थलोकान्तरस्थानामुपास्यमतो विलक्षणमिति

रेदमनुसन्धते यद्वा शरीरं धृत्वाऽवस्थादिभेदेनान्यदन्य-
वतीति ध्यायति न स मुक्तो भवितुमर्हत्यपितु मुहुर्मु-
र्जन्ममरणेएवावाप्नोति। अत्रैवपदेन सूच्यते य उपाधि-
रेदेन कल्पितमपि नानात्वं ब्रह्मणि पश्यति सोऽप्यवि-
द्यायस्तएव। तेन जीवाभिन्नं ब्रह्म ब्रह्माभिन्नो जीवइति
वदन्तः परास्ताः ॥ १० ॥

भाषार्थः—(यत्, एव) जो ही (इह) इस जन्म में सब का धार-
ा पालन वा प्रकाश करने वाला है (तत्, अमुत्र) वही जन्मान्तर
ं तथा (यत्, अमुत्र) जो जन्मान्तर में है (तत्) वह (अनु, इह) यहां
ै अर्थात् इस जन्म में जिस के अनुकूल ब्रह्म है उस के लिये
न्मान्तरमें भी वैसा ही रहता है (यः) जो पुरुष (इह) इस ब्रह्म
ं (नानेव) भिन्न सी [पश्यति] दृष्टि करता (सः) वह (मृत्योः)
ृत्यु से (मृत्युम्) मृत्यु को (आप्नोति) बार २ पाता है ॥

भा०—जैसे चेतन शरीर में रहने वाले जीव के अवस्था भेद
े उसी शरीर में वा अन्यजन्म तथा अन्ययोनि की प्राप्ति में
ुण कर्म स्वभाव बदल जाते हैं वैसे परमेश्वर के नहीं बदलते वह
ो सदा एकरस रहता हुआ शत्रु मित्र भेद से रहित है न उस
ा कोई शत्रु वा मित्र न वह किसी का शत्रु वा मित्र होता है।
किन्तु सदा अपनी स्वाभाविक शक्ति से सब का धारण वा
ालन करता है जिज्ञासु पुरुष को चाहिये कि ब्रह्म एकरस है
ऐसा ध्यान करे। जो कोई मोक्ष के लिये यत्न करता हुआ भी
ुरुष परमेश्वर में परिणामवाद (कारण से कार्य के समान अन्य २
ूप बनने) आदि से विलक्षण २ होना मानता है। वह हमारा
उपास्य ब्रह्म शुद्ध है तथा अन्य मतवादी वा अन्यद्वीप वा लोक
के निवासियों का उस से विलक्षण है ऐसा भेद जानता। यद्वा
शरीर धारण कर अवस्थादि के भेद से ब्रह्म अन्य २ होता ऐसा
ध्यान करता है वह मुक्त नहीं होसकता किन्तु बार २ जन्म मरण

को ही प्राप्त होता रहता है इस मंत्र में इवपद से यह प्रती होता है कि जो उपाधि भेद से कल्पना किये भेद को भी ब्रह्म में देखता है वह भी अविद्या से युक्त ही है। इस से सिद्ध हुआ कि जो लोग जीव से अभिन्न ब्रह्म वा ब्रह्म से अभिन्न जीव ऐसा मानते हैं उन का मत निर्मूल है ॥ १० ॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन। मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ ११ ॥

अ०—(इदम्) ब्रह्म (मनसैव) शास्त्रसंस्कारेण शुद्धया सूक्ष्मप्रज्ञयैव (मनोऽनुबुद्धिरित्यभिप्रेतम्। नसंकल्पविकल्पात्मिका वृत्तिः) (आप्तव्यम्) (इह) ब्रह्मणि (किंचन) किमपि (नाना) प्रकारान्तरेण प्राप्तिसाधनम (नास्ति) (यः) (इह) (नानेव) (पश्यति) (सः,मृत्योः मृत्युम्,गच्छति) ॥

भा०—ब्रह्मज्ञानस्यानेके उपाया न सन्ति किन्तु शास्त्रसिद्धान्तसंस्कृतध्यानसमाधिसम्पन्नशुद्धमनीषयैव कश्चित्सदैकरसं ब्रह्म ज्ञातुं शक्तः। अन्ये चोपाया बुद्धि शोधनहेतवः। यश्च नानोपायान् पश्यति तेषु ब्रह्मज्ञानासम्भवात्तज्ज्ञानमन्तरेण मुक्तावसत्यां पुनःपुनर्जन्ममरणप्रवाह एव स पतति ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(इदम्) इसब्रह्म को (मनसैव) शास्त्राभ्यास से शुद्धहुई सूक्ष्मबुद्धि से ही (आप्तव्यम्) प्राप्त होना चाहिये (इह) इस ब्रह्मज्ञान विषय में (किंचन) कुछ भी (नाना) प्रकारान्तर से

प्राप्तिका साधन (नास्ति) नहीं है [यः) जो पुरुष [इह] इस विषय में [नानेव] अनेक साधन हैं [पश्यति] ऐसा देखता [सः,मृत्योः-मृत्युम्, गच्छति] वह मृत्यु से फिर मृत्यु को प्राप्त होता है ॥

भा०—ब्रह्मज्ञान के अनेक उपाय नहीं हैं किन्तु आस्तीय सिद्धान्त से संस्कृत तथा ध्यानसमाधि में लगी शुद्धबुद्धि से ही कोई जन एकरस ब्रह्म को जान सकता है। अन्य उपायबुद्धि शोधने के हैं जो पुरुष अनेक प्रकार के उपायों को देखता उन से ब्रह्मज्ञान होना असम्भव है ज्ञान के विना मुक्ति न होने से मनुष्य बार २ जन्म मरण के प्रवाह में पड़ा रहता है ॥ ११ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत् ॥ १२ ॥

भा०—निर्मलदर्पणे रूपमिवास्मिन्नेव शरीरस्थान्तःकरणे परमात्मोपलभ्यतइत्युक्तम् स कस्मिन् प्रदेशे तिष्ठतीत्युच्यते-(मध्ये) (आत्मनि) शरीरे (अङ्गुष्ठमात्रः) अङ्गुष्ठपरिमाणं हृदयरूपं वेश्म यच्च लिङ्गशरीरेण साकं जीवस्तिष्ठति तच्चैव ध्यानेन परमात्मोपलभ्यतेऽतोऽङ्गुष्ठमात्रस्थानोपलभ्यत्वादङ्गुष्ठमात्रइत्युच्यते (पुरुषः) सर्वत्र पूर्णो व्याप्तः (तिष्ठति) (भूतभव्यस्य) अतीतानागतसर्ववस्तुजातस्य (ईशानः) अध्यक्षोस्ति (ततः) तस्मादात्मनः कोपि (न,विजुगुप्सते) न ग्लायति दोषं तस्य वा भवति यदि तदनुकूलमाचरति (एतद्वै,तत्) यत्त्वया पृष्टं तदेतदेव ब्रह्मास्तीति विजानीहि ॥

भा०—प्रत्यगात्मदृष्ट्या ध्यानशीलेन परमात्मा ज्ञातुं शक्यइतिबहुश उक्तम् यद्यपि कालत्रयस्थस्य जगतः स्वामी सर्वत्र व्याप्तः परमात्मास्ति तथापि दर्पणे रूपमिव शुद्धान्तःकरणे जिज्ञासुना ध्यानेन द्रष्टुं शक्यः। यदा कश्चिन्निषिद्धं कर्म कर्तुं मनः कुरुते तदा स भयमुत्पादयति यदा च शुभकर्मारब्धुमिच्छति तदा चेतः प्रसादयति सएव हृदयान्तर्यामी परमात्मास्ति यदा मनुष्यस्तदनुकूलमाचरति तदा तस्य विषादो नैव जायते किन्तु सदानन्दी भवति ॥ १२ ॥

भाषार्थः—निर्मल दर्पण में जैसे रूप दीखता वैसे इसी शरीरस्थ शुद्ध अन्तःकरण में परमात्मा का ज्ञान होता यह पहिले कई वार कहा है सो वह शरीर के किस स्थल में रहता है सो कहते हैं :—(आत्मनि) शरीर में (अङ्गुष्ठमात्रः) हृदय में स्थित [अंगुठे के बराबर हृदय रूप घर में जहां लिङ्ग शरीर सहित जीवात्मा रहता है वहीं ध्यान करने से परमात्मा प्राप्त होता इस लिये अंगुष्ठमात्र स्थान में प्राप्त होने से अंगुष्ठमात्र कहा गया) (पुरुषः) सर्व च परिपूर्ण व्याप्त परमात्मा (मध्ये) बीच में (तिष्ठति) विराजमान है वह (भूतभव्यस्य) भूत भविष्यत् में होने वाले सब पदार्थों का (ईशानः) स्वामी है (ततः) उस के अनुकूल आचरण करने वाला (न,विजुगुप्सते) ग्लानि को प्राप्त नहीं होता अर्थात् उस का चित्त नहीं बिगड़ता (एतद्वैतत्) जिस को तुझ नचिकेता ने पूछा वह यही ब्रह्म है ऐसा तू जान ॥

भा०—भीतर को दृष्टि कर के ध्यानशील पुरुष परमेश्वर को जान सकता है यह कई वार पहिले कहा है। यद्यपि तीनों काल में होने वाले जगत् का स्वामी सर्वत्र व्याप्त परमात्मा है तो भी दर्पण में रूप के तुल्य जिज्ञासु को ध्यान के साथ शुद्धान्तःकरण देखने योग्य है। जब कोई निषिद्ध बुरा कर्म करना चाहता है

तब वह भय उत्पन्न करता और जब शुभ कर्म का आरम्भ करना चाहता है तब चित्त को प्रसन्न करता वही हृदय का अन्तर्यामी परमात्मा है। जब मनुष्य उस के अनुकूल आचरण करता है तब उस को किसी प्रकार का खेद नहीं होता किन्तु सदा आनन्द युक्त रहता है ॥ १२ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः । ईशानो भूतभव्यस्य सएवाद्य स उश्वः । एतद्वै तत् ॥ १३ ॥

अ०-(अङ्गुष्ठमात्रः) सएवाङ्गुष्ठमात्रस्थानीयः (पुरुषः) पुरि ब्रह्माण्डे विशेषेण शरीरैकदेशे हृदये वा शयानो व्याप्तः परमेश्वरः (अधूमकः) अधूमकं धूमरहितं निर्मलम् । लिङ्गव्यत्ययः (ज्योतिरिव) ज्ञानप्रकाशमयः (भूतभव्यस्य) (ईशानः) (सएव) (अद्य) सर्वाध्यक्षः (स,उ,श्वः) सएवागामिनि दिवसेऽपि सर्वस्वामी प्रविष्यति (एतद्वै तत्) तदेतदेव ब्रह्मास्ति ॥

भा०—यथा लोके राज्याद्यधिकारिणां स्थितिरनित्यास्ति कश्चिन्म्रियते तदाऽन्याध्यक्षस्तत्र तिष्ठति निर्बलं पराजित्य बलवान् वाधिकारी भवति । एवं सर्वाधिकारिणां व्यत्ययो दृश्यते। तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूपस्य सदैकरसस्य सास्यातिशयैश्वर्यवतस्सर्वोपरिबलवतः परमेश्वरस्याधिकारे न कश्चित्कदाचित्तिष्ठति स्थातुमर्हति वा स्वकार्यस्य सर्वदा स्वयमेवाध्यक्षः सोऽस्ति ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(अङ्गुष्ठमात्रः) वही अंगुठा भर स्थान में प्राप्त होने योग्य (पुरुषः) ब्रह्माण्ड वा विशेष कर शरीरस्थ हृदय में व्याप्त परमेश्वर (अधूमकः) धूम रहित निर्मल (ज्योतिरिव) ज्योति के समान ज्ञानप्रकाश स्वरूप (भूतभव्यस्य) भूतभविष्यत् का (ईशानः) स्वामी [सएव] [अद्य] वही आज सब का अध्यक्ष है [स,उ,श्वः] और वही कल रहे गा [एतद्वैतत्] वह यही ब्रह्म है ॥

भा०—जैसे लोक में राज्याधिकारियों की स्थिरता अनित्य है कोई मर जाता है तो उस के अधिकार पर दूसरा नियत किया जाता अथवा निर्बल राजा को बलवान् हरा के अधिकारी बन बैठता है इसी प्रकार संसार में सब अधिकारों की बदली होती रहती है वैसे ज्ञानप्रकाश स्वरूप सदा एकरस सर्वोपरि ऐश्वर्यवान् तथा बलवान् परमेश्वर के अधिकार पर कभी कोई स्थित न होता तथा न होने योग्य है अर्थात् वह एक ही स्वयं सदा अपने कामों का अधिष्ठाता है ॥ १३ ॥

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति। एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥ १४ ॥

अ०—(यथा) (दुर्गे) विषमप्रदेशे (वृष्टम्) (उदकम्) (पर्वतेषु) निम्नप्रदेशेषु (विधावति) (एवम्) (धर्मान्) धर्मितः (पृथक्) (पश्यन्) (तानेव) धर्मानेव (अनुविधावति) पश्चाद्गच्छति ॥

भा०—धर्मधर्मिणोः समवायः सम्बन्धः नित्यस्य धर्मिणो धर्मा अपि नित्य भवितुमर्हन्ति। अतो यो वदेन्नाहं किमपि करोमि शरीरमेव सर्वं करोति तन्मतमशास्त्रीयम्। चेतनधर्मास्तमन्तरेण क्वापि न भवितुमर्हन्ति

किन्तु स धर्मी तानेव धर्मानन्गच्छति। अतः पृथक् न पश्येत्। किन्तु चेतनस्य के धर्माः स्वाभाविकाः के च सांसर्गिकाइति विवेचना कार्या ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (दुर्गे) विषम ऊंचे नीचे स्थल में (वृष्टम्) वर्षा (उदकम्) जल (पर्वतेषु) नीचे स्थलों में (विधावति) आगता है (एवम्) इसी प्रकार (धर्मान्) गुणों को गुणी से (पृथक्) भिन्न (पश्यन्) देखता हुआ (तानेव) उन्हीं गुणों का (अनुविधावति) अनुगामी होता है ॥

भा०—धर्म धर्मी का समवाय सम्बन्ध है। नित्य धर्मी के धर्म भी नित्य ही होते हैं इस लिये जो कहे कि मैं कुछ नहीं करता किन्तु शरीर ही सब करता है उस का मत शास्त्र विरुद्ध है क्यों कि चेतन के गुण उस के विना शरीरादि में नहीं रह सकते किन्तु वह धर्मी उन धर्मों का अनुगामी रहता है इस लिये धर्मों को पृथक् न देखे। किन्तु चेतन के कौन २ स्वाभाविक और कौन २ संयोगी धर्म हैं इस की विवेचना अवश्य करनी चाहिये ॥ १४ ॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति। एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥ १५ ॥

अ०—हे (गौतम) गोतमवंशोत्पन्न नचिकेतः (यथा) (शुद्धे) स्वच्छे प्रदेशे (शुद्धम्) (आसिक्तम्) समन्तात्-क्षिप्तम् (उदकम्) (तादृगेव) शुद्धमेव (भवति) (एवं,विजानतः,मुनेः) विज्ञानवतोऽल्पभाषिणो ज्ञानिनः (आत्मा) (भवति) ॥

भा०—यश्च धर्मिंत आत्मनो धर्मान् पृथङ्न पश्यति किन्तु संसर्गदोषान् विहाय स्वात्मनो निर्मलत्वादि स्वाभाविकधर्मानन्तःकरणेऽनुसन्धत्ते तस्य शुद्धे सिक्तं जलमिव ज्ञानरूपे शुद्धवारिण्यन्तःकरणे ध्यानेन निमज्यात्मापि शुद्धएव भवति। नत्वशुभमाचरन्नपि न मां कर्माणि लिम्पन्ति नाहंकर्त्तेति मत्वा कश्चिच्छुद्धो भवितुमर्हति ॥ १५ ॥ इति चतुर्थी वल्ली समाप्ता ॥

भाषार्थः—हे(गौतम) गोतम वंशी नचिकेता (यथा) जैसे (शुद्धे) सम चौरस प्रदेश में (शुद्धम्) शुद्ध निर्मल (आसिक्तम्) अच्छे प्रकार सींचा हुआ (उदकम्) जल (तादृगेव) शुद्ध ही (भवति) होता है (एवम्) इसी प्रकार (विजानतः) विज्ञानवान् (मुनेः) अल्पभाषी ज्ञानी पुरुष का (आत्मा) आत्मा शुद्ध ही (भवति) होता है ॥

भा०—जो पुरुष धर्मी आत्मा से धर्मों को पृथक् नहीं देखता किन्तु संयोगी दोषों को छोड़ कर अपने आत्मा के निर्मल पन आदि स्वाभाविक धर्मों को अन्तःकरण में अनुसन्धान करता है उस के शुद्धस्थल में सींचे जल के तुल्य अन्तःकरण के ज्ञान रूप शुद्ध जल में ध्यान से डुबकी लगा के शुद्ध ही हो जाता है। कोई पुरुष बुरे कर्म का आचरण करता हुआ भी मुझ को कर्म नहीं लगते मैं कर्त्ता नहीं ऐसा मान कर शुद्ध नहीं हो सकता ॥ १५ ॥

यह चौथी वल्ली समाप्त हुई ॥

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वै तत् ॥ १ ॥

अ०—अथ पञ्चमी वल्ली प्रारभ्यते तस्यामादितोऽन्तरात्मविज्ञानं वक्तुं प्रक्रमते:—(अवक्रचेतसः) अवक्रम-कुटिलं चेतो विज्ञानमस्य तथाभूतस्य (अजस्य) कुतश्चि-त्कारणादनुत्पन्नस्यानादेर्नित्यस्य जीवात्मनः (एकाद-शद्वारम्) शिरसि सप्त पायूपस्थनाभयस्त्रीषयधस्थानि मूर्ध्न्येकमित्येकादशछिद्रसम्पन्नम् (पुरम्) पत्तनमिव राजस्थानीयं भोगसाधनं शरीरम् (अनुष्ठाय) वर्णाश्रम धर्मकृत्यपूर्वकं संसेव्य, सर्वं कर्त्तव्यं कर्म मया कृतमिति ध्यायन् (न,शोचति) ऋणत्रयात् (विमुक्तश्च) शरीरादपि (विमुच्यते) पुनर्न जायते (एतत्, वै,तत्) एतदेव तद्वि-ज्ञानस्य फलम् ॥

भा०—यथा यस्मिन् परितःकृतप्राकारे पत्तने गमना-गमनाय द्वाराणि भवन्ति तत्तस्मिन्विज्ञानसम्पन्नः पुर-स्वामी राजा राजधर्मपुरस्सरं संसेवते धर्मानुकूलवर्त्ती सन् शोकाकुलो न जायते तथैव परित्यक्तमिथ्याज्ञानः सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कार्यसाधकैकादशछिद्रसहितं नगर-स्थानीयं शरीरमाश्रमत्रये धर्मानुकूलं संसेव्य चतुर्थाश्र-मस्थः पुरुषो न शोचति शरीरं विहाय मुक्तश्च भवत्ये-तदेव ब्रह्मज्ञानस्य फलम् ॥ १ ॥

भावार्थः—अब पांचवीं वल्ली का प्रारम्भ किया जाता है उस के प्रारम्भ से अन्तरात्मा जीव के जानने का उपाय कहते हैं (अव-क्रचेतसः) जिस का कुटिल वा उलटा ज्ञान नहीं उस (अजस्य) किसी कारण से न उत्पन्न होने वाले अनादि नित्य जीवात्मा राजा के (एकादशद्वारम्) ग्यारह दरवाजे (आंख के दो नाक के

दो कान के दो एक मुख का, गुदा, लिङ्ग दो नीचे एक नाभि एक मस्तक में ये ग्यारह छिद्र रूप शरीर में द्वार हैं) वाले (पुरम्) शरीर रूप नगर को (अनुष्ठाय) वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था वा नियम सहित सेवन कर के (अपना कर्त्तव्य मैं ने कर लिया ऐसा ध्यान करता हुआ) (न,शोचति) शोच नहीं करता और ऋषि, देव और पितृ सम्बन्धी तीनों ऋणों से (विमुक्तश्च) छूटा अर्थात् तीन आश्रम धर्मों के सेवन से तीनों ऋण चुका के शरीर से भी (विमुच्यते) छूट जाता है (एतद्वैतत्) सो यही ब्रह्मज्ञान का फल है ॥

भा०—जैसे जिस नगर में सब ओर से परकोटा खिंचा हो और आने जाने के लिये कई दरवाजे नियत कर दिये जावें उस को सम्यग् ज्ञान शील नगराधीश राजा राजधर्म के अनुकूल सेवन करे वह राजा धर्मानुकूल वर्त्ताव करने से शोकातुर नहीं होता वैसेही जिस ने मिथ्याज्ञान छोड़ दिया वह तत्त्वज्ञानी कार्यों के सिद्ध करने वाले ११ छिद्रों (सात शिर में दो नीचे इस में ९ छिद्रतो प्रसिद्ध ही हैं १ नाभि जिस के द्वारा रस पहुंच कर गर्भ का शरीर बनता है । १ छिद्र मूर्द्धा में होता है वहां गर्भावस्था में सूक्ष्म त्वचा पुर जाती है डेढ़ दो वर्ष तक के बच्चों का वहां स्थल मूर्द्धा में फड़कता रहता है वही द्वार है ये ११ छिद्र हैं स्त्री के उपस्थ में दो छिद्र होते हैं १ मूत्र का १ जनने का उस के १२ होंगे यहां पुरुष के ११ छिद्र कहे हैं) वाले नगरस्थानी शरीर का तीन आश्रमों में धर्मानुकूल सेवन कर पुरुष ४ थे संन्यास आश्रम में शोकातुर नहीं होता और शरीर को छोड़ के मुक्त हो जाता है यही ब्रह्मज्ञान का फल है ॥ १ ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्

अप्सद्वृजा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतंबृहत् ॥ २ ॥

अ०—(हंसः) हन्ति शरीराच्छरीरान्तरं गच्छतीति हंसः। औणादिकः सः प्रत्ययः (शुचिषत्) शुचावव्यक्ताशे परमात्मनि वा सीदति (वसुः) वसति मनुष्यादिशरीरेषु सः (अन्तरिक्षसत्) मध्यवर्त्तिनि हृदयावकाशे सीदति (होता) योगयज्ञमनुष्ठाता। वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदेति वचनात् (वेदिषत्) वेद्यां पृथिव्यां सीदति शरीरधारित्वात्। इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या-इति वेदमन्त्रप्रामाण्याद्वेदिशब्देन पृथिवी गृह्यते। (अतिथिः) शरीरस्थितावनियततिथिर्विरक्तत्वाद्वा (दुरोणसत्) दुरोणे स्वाश्रमे कुट्यादौ सीदति (नृषत्) मनुष्यशरीरे सीदति (वरसत्) वरे श्रेष्ठे ब्रह्मर्ष्यादिशरीरे सीदति (ऋतसत्) ऋते यज्ञे सत्ये ब्रह्मणि वा सीदति (व्योमसत्) व्योम्नि—आकाशे धृतसूक्ष्मशरीरः सीदति (अब्जाः) अप्सु जलजन्तुमकरादिरूपेण जायते (गोजाः) गवि पृथिव्यां स्थावररूपेण जायते (ऋतजाः) ऋताद्ब्रह्मणो जायतउत्पद्यते (अद्रिजाः) अद्रिषु पर्वतेषु तच्छयजन्तुरूपेण जायते (ऋतम्) स्वयमपि सत्यस्वरूपम् (बृहत्) महाशयः॥

भा०—स्वरूपस्थः शुद्धो जीवात्मा शुद्धे परमात्मनि कृतनिष्ठो नानायोनिसहस्रेषु बहुविधा बाधा विचिन्त्य संसेवितयथोक्तसाधनो महान्तं विभुं परमात्मानं ज्ञातुं शक्नोति ॥ २ ॥

भाषार्थः-(हंसः) एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने (शुचिषत्) पवित्र स्थल हृदय रूप में वा परमात्मा में स्थित होने (वसुः) मनुष्यादि योनियों में बसने (अन्तरिक्षसत्) शरीर के मध्य वर्त्ती हृदय रूप अवकाश में रहने (होता) योगयज्ञ का सेवन कर्त्ता (वाणी में प्राण वा प्राण में वाणी का लय करना योगयज्ञ कहाता है) (वेदिषत्) शरीरधारी होने से पृथिवी में रहने (दुर्यवेदिः०)-इस मंत्र में वेदि शब्द पृथिवी का वाचक है इस लिये वेदि शब्द से पृथिवी लीगई (अतिथिः) जिस के आने जाने वा मरने जीवने की तिथि नियत नहीं (दुरोणसत्) अपने आश्रम कुटी आदि में ठहरने (नृषत्) मनुष्य शरीर धारण करने (वरसत्) श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि आदि के शरीर में रहने (ऋतसत्) यज्ञ वा सत्य ब्रह्म में स्थिर होने (व्योमसत्) सूक्ष्म शरीर धारण कर आकाश में ठहरने (अब्जाः) मगर आदि रूप से जल जन्तुओं में उत्पन्न होने (गोजाः) वृक्ष वनस्पत्यादि रूप से पृथिवी में उत्पन्न होने और (ऋतजाः) ऋत नाम ब्रह्म का भी है उस से उत्पन्न (अद्रिजाः) पर्वतों में पर्वतीय जल जन्तुओं के रूप से उत्पन्न होने वाला (ऋतम्) सत्यस्वरूप (बृहत्)गम्भीर विचार वाला है ॥

भा०—अपने स्वरूप में अवस्थित शुद्ध हुआ जीवात्मा सर्वदा शुद्ध परमात्मा में जिस की निष्ठा है अनेक प्रकार की हजार हों योनियों में बहुत प्रकार की बाधाओं का चिन्तन कर सम्यक् सेवन किये हैं यथोक्त साधन जिस ने ऐसा हुआ महत्परिमाण विशिष्ट सर्व व्यापक परमात्मा को जान सकता है ॥ २ ॥

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ३ ॥

अ०—यो जीवात्मा योगाभ्यासावसरे (प्राणम्) हृदिस्थितं प्राणवायुम् (ऊर्ध्वम्) (उन्नयति) (अपानम्) गुदेन्द्रियसंचारिणं वायुम् (प्रत्यक्) उदरे (अस्यति) क्षिपति तम् (मध्ये) नाभिकण्ठयोर्मध्ये (आसीनम्) (वामनम्) वामं नित्यप्रशस्तं शुद्धं ज्योतिःस्वरूपं विद्युतेऽस्य स वामनः। प्रामादित्वान्नस्तद्धितः। एवं भूतं जीवात्मानं प्रजा राजानमिव (विश्वे) सर्वाणि (देवाः) इन्द्रियाणि (उपासते) सेवन्ते ॥

भा०—जीवात्मा यदा योगाङ्गानुष्ठानेन स्वरूपेऽवतिष्ठते तदा प्रत्यगात्मभूता इन्द्रियशक्तय आसनमध्यासीनं राजानमिव तं जीवात्मानमन्तःकरणरूपे सदस्युपासते ॥ ३ ॥

भाषार्थः—जो जीवात्मा योगाभ्यास के समय (प्राणम्) हृदय में रहने वाले प्राण वायु को (ऊर्ध्वम्) ऊपर ब्रह्माण्ड में (उन्नयति) आकर्षण करता (अपानम्) गुदाद्वारा चलने वाले वायु को (प्रत्यक्) उदर में (अस्यति) फेंकता उस (मध्ये) नाभी और कण्ठ के बीच अन्तःकरण में (आसीनम्) स्थित (वामनम्) प्रशस्त नित्य शुद्ध प्रकाशस्वरूप युक्त जीवात्मा को (जैसे प्रजाजन राजा को वैसे) (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहार साधक इन्द्रिय (उपासते) सेवन करते हैं ॥

भा०— जीवात्मा जब यम, नियम, आसन प्राणायामादि योग के अवयवों के सेवन से अपने स्वरूप में स्थित होता तब भीतर अन्तःकरण की ओर फिरी हुई इन्द्रियों की शक्तियां राजगद्दी पर बैठे राजा के तुल्य उस जीवात्मा को अन्तःकरण रूप सभा में सेवन करती (अर्दली में हाज़िर रहती) हैं ॥ ३ ॥

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः। देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥ ४ ॥

अ०—(अस्य) (शरीरस्थस्य) (देहिनः) देहः शरीरमस्यास्तीति सम्बन्ध इनिः (विस्रंसमानस्य) भ्रश्यमानस्यार्थात् (देहात्) कलेवरात् (विमुच्यमानस्य) (किम्) लक्ष्म (अत्र) (परिशिष्यते) न किमपीत्यर्थः । यस्य च भ्रंशो देहाद्विमोचनं वा न भवति (एतद्वै तत्) एतदेव ब्रह्मास्तीति बोध्यम् ॥

भा०—यदा जीवोऽस्माच्छरीरान्निस्सरति तदा तस्य सर्वाइन्द्रियप्राणशक्तयस्तेन साकमेव बहिर्निस्सरन्ति न किमप्यत्र परिशिष्यते यच्च विस्रंसनविमोचनाभ्यां पृथग्वशिष्यते तदेव ब्रह्मास्तीति ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अस्य) इस (शरीरस्थस्य) शरीर में रहने वाले (देहिनः) शरीर के स्वामी के (विस्रंसमानस्य) पृथक् होते अर्थात् (देहात्) शरीर को (विमुच्यमानस्य) छोड़ते हुए जीवात्मा का (किम्) क्या चिन्ह (अत्र) इस शरीर में (परिशिष्यते) शेष रह जाता है ? अर्थात् कोई नहीं और जिस को दुःख में गिरना वा शरीर से पृथक् होना नहीं होता (एतद्वै तत्) वह यही ब्रह्म है सो जानना चाहिये ॥

भा०—जब मरण समय जीवात्मा इस शरीर से निकलता है तब उस के इन्द्रिय और प्राणों की सब शक्ति उस के साथ ही निकल जाती हैं किन्तु शरीर में चेतन का कोई चिन्ह शेष नहीं रह जाता और जिस को शरीर के संयोग वियोग से दुःख नहीं पहुंचता वही ब्रह्म जानने योग्य है ॥ ४ ॥

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन। इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥ ५ ॥

अ०—(कश्चन) (मर्त्यः) मरणधर्मा आत्मदेहेन्द्रियसंघातो मनुष्यः (न,प्राणेन) (न,अपानेन) (जीवति) किन्तु (यस्मिन्) अन्तरात्मनि (एतौ) प्राणापानौ (उपाश्रितौ) तेन (इतरेण) प्राणापानाभ्यां भिन्नेन जीवात्मना (जीवन्ति) आत्मदेहेन्द्रियमनःसंघाता इति शेषः ॥

भा०—लौकिका जानन्ति वदन्ति च प्राणापाननिरोधएव देहिनां मरणमिति। अतएव ते निर्बीजसमाधिस्थान् योगिनोऽपि मृतान् जानन्ति तच्च मिथ्याज्ञानमित्। प्राणापाननिरोधेपि प्राणापानाधिकरणेन विद्यमानेन जीवात्मना मर्त्यो जीवत्येव ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(कश्चन) कोई (मर्त्यः) मनुष्य (न,प्राणेन) प्राण से और (न,अपानेन) न अपानसे (जीवति) जीता है किन्तु (यस्मिन्) जिस अन्तरात्मा में (एतौ) ये दोनों प्राण अपान (उपाश्रितौ) आश्रित हैं (इतरेण) प्राण अपान से भिन्न वर्त्तमान उस जीवात्मा के होने से जड़ चेतन के संयोगसे बने शरीर समुदाय (जीवन्ति) जीते हैं ॥

भा०—संसारी मनुष्य जानते वा कहते हैं कि प्राण अपान का बन्द होना ही मनुष्य का मरना है। इसी लिये वे निर्बीज समाधिस्थ योगियों को भी मरे जान लेते हैं सो यह मिथ्या ज्ञान है क्योंकि प्राणापान के बन्द होने पर भी उन के आधार विद्यमान जीवात्मा से मनुष्य जीता ही है ॥ ५ ॥

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् । यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥ ६ ॥

अ०—हे (गौतम) गोतमवंशावतंस नचिकेतः (हन्त) अनुकम्पायाम् (ते) तुभ्यम् (इदम्) प्रस्तुतम् (सनातनम्) (गुह्यम्) अधिकारिणएव त्वादृशे कस्मैचिदेकान्त उपदेश्यम् (ब्रह्म) (प्रवक्ष्यामि) उपदेक्ष्यामि त्वमेकाग्रमनाः शृणु (यथा,च) (मरणम्) (प्राप्य) (आत्मा) निरन्तरं देहाद्देहान्तरं गन्ता (भवति) तदपि त्वं शृणिवति वाक्यशेषः ॥

भा०—यद्यपि ब्रह्मज्ञानोपदेशं कर्त्तुं पूर्वतएवाचार्यः प्रवृत्तस्तथाप्यनुकम्पायुक्तः पुनराह-इदानीं सनातनस्य ब्रह्मणो ज्ञानमेव प्राधान्येन वक्ष्यामि यद्विज्ञाय मनुष्य संसारचक्रेऽनिशं भ्रमति तदपि वक्ष्यामि त्वं शृणु ॥६॥

भाषार्थः—हे (गौतम) गोतम कुल के दीपक (हन्त) कृपा करने योग्य नचिकेतः (ते) तेरे लिये (इदम्) इस (सनातनम्) सनातन (गुह्यम्) तेरे तुल्य किसी अधिकारी को ही उपदेश करने योग्य (ब्रह्म) ब्रह्म का (प्रवक्ष्यामि) उपदेश करूंगा तू एकाग्र चित्त होकर सुन (च) और मनुष्य (यथा) जैसे (मरणम्) मरण को(प्राप्य) प्राप्त होकर (आत्मा) शरीर से शरीरान्तर को जाने वाला (भवति) होता है सो भी कहूंगा तू सुन ॥

भा०—यद्यपि ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने को आचार्य पहिले से ही प्रवृत्त हैं तो भी कृपा युक्त होकर फिर बोले कि अब मुख्य कर सनातन ब्रह्म का ज्ञान ही कहूंगा जिस को न जान कर

संसार चक्र में मनुष्य प्रतिदिन भ्रमता है उस को भी कहूंगा तू सुन ॥ ६ ॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः । स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७ ॥

अ०—(अन्ये) ब्रह्मज्ञानविमुखाः (देहिनः) मनुष्याः (यथाकर्म) यादृशं यस्य कर्म यावच्च (यथाश्रुतम्) यादृशं यावच्च शास्त्रविज्ञानं लब्धं तादृशसंस्कारजन्यवासनारज्जुभिराकृष्यमाणाः केचित् (शरीरत्वाय) मनुष्यादिशरीरभावाय शरीरग्रहणार्थम् (योनिम्) शुक्रशोणितसंयुतं योनिद्वारम् (प्रपद्यन्ते) प्राप्नुवन्ति (अन्ये) केचित् मानसपापकारिणः । मानसैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः । मनु० अ० १२ (स्थाणुम्) वृक्षादिस्थावरभावम् (अनुसंयन्ति) अनुगच्छन्ति ॥

भा०—ये ब्रह्मज्ञानाय न प्रयतन्ते ते मूढा जन्मान्तरे पूर्वसंचितकर्मानुसारमुत्तममध्यमनिकृष्टयोनीः प्राप्य दुःखान्येव भुञ्जते ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(अन्ये) ब्रह्मज्ञानी से अन्य (देहिनः) मनुष्य (यथाकर्म) जैसा वा जितना जिस का कर्म हो वा (यथाश्रुतम्) जैसा वा जितना शास्त्रज्ञान जिस को प्राप्त हुआ हो वैसे संस्कारों से हुई वासना रूप रस्सियों से बंधे खिंचे हुए (शरीरत्वाय) मनुष्यादि का शरीर धारण करने के लिये (योनिम्) वीर्य और रुधिर संयुक्त योनि के सुख को (प्रपद्यन्ते) प्राप्त होते हैं (अन्ये) और कोई

अति निकृष्ट मन से पाप करने वाले (स्थाणुम्) वृक्षादि स्थावर योनियों को (अनु,संयन्ति) मरणानन्तर प्राप्त होते हैं ॥

भा०—जो लोग ब्रह्मज्ञान होने के लिये प्रयत्न नहीं करते वे मूर्ख पूर्व जन्मान्तरों में किये कर्मों के अनुसार उत्तम मध्यम निकृष्ट योनियों को प्राप्त होके दुःख ही भोगते हैं ॥ ७ ॥

य एष सुप्तेषु जागर्त्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वै तत् ॥ ८ ॥

अ०—(यः,एषः) अन्तर्यामी (पुरुषः) पुरि ब्रह्माण्डे शयानो व्याप्तः (कामंकामम्) प्रत्येककामनापूर्त्यर्थम् । वीप्सायां द्विर्वचनम् (निर्मिमाणः) सर्वान्पदार्थानिति शेषः (सुप्तेषु) प्रमादालस्यनिद्रानिमग्नेषु जीवात्मसु सत्सु (जागर्त्ति) याथातथ्येन सर्वं जानाति (तदेव) (शुक्रम्) शुद्धम् (तद्ब्रह्म) सर्वस्माद्बृहद् गुह्यं ब्रह्म (तदेव) (अमृतम्) अविनश्वरम् (उच्यते) शास्त्रेषु-इतिशेषः (तस्मिन्) ब्रह्मणि (सर्वे) (लोकाः) पृथिव्यादयः (श्रिताः) (तत्) ब्रह्म (कश्चन) लोकः (नात्येति) तत्कृतनियमान्नोल्लङ्घयति (एतद्वै तत्) एतदेव तद्ब्रह्मास्ति यत्त्वया पृष्टम् ॥

भा०—यो जीवेषु भ्रान्तेषु न कदाचिद् भ्राम्यति जगदुपकाराय सर्वं वस्तु यथासमयं निर्मिमीते तन्नित्यशुद्धं सर्वाधारमचलनियमं नित्यमुक्तं सास्यातिशयविनिर्मुक्तस्वरूपं ब्रह्म कल्याणेप्सुना विज्ञातव्यम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(यः,एषः) जो यह अन्तर्यामी (पुरुषः) सब ब्रह्माण्ड में व्याप्त (कामं कामम्) प्रत्येक कामना की पूर्ति के लिये (निर्मिमाणः) सब पदार्थों का निर्माण करता हुआ (सुप्तेषु) प्रमाद आलस्य और निद्रा में सोते अर्थात् फसे हुए जीवों में (जागर्त्ति) जागता—यथावत् सब को जानता है (तदेव) वही (शुक्रम्) शुद्ध (तद्ब्रह्म) वही सब से बड़ा गुह्य ब्रह्म (तदेव) वही (अमृतम्) शास्त्रों में अविनाशी (उच्यते) कहा जाता है (तस्मिन्) उस ब्रह्म में (सर्वे) सब (लोकाः) पृथिवी आदि लोक (श्रिताः) ठहरे हुए हैं (तत्) उस का (कश्चन) कोई लोक वा मनुष्य (न,अत्येति) उलंघन नहीं कर सकता अर्थात् उस के नियमों को नहीं तोड़ सकता (एतद्वैतत्) यही वह ब्रह्म है जो तूने पूछा था ॥

भा०—जो जीवों के भ्रम युक्त होने पर भी भ्रम युक्त नहीं होता जगत् के उपकार के लिये यथासमय सब वस्तुओं को रचता है वह नित्य शुद्ध सब का आधार जिस का नियम अचल है नित्य मुक्त और जिस के तुल्य वा जिस से अधिक किसी का स्वरूप नहीं वह ब्रह्म कल्याण की इच्छा वाले को जानने योग्य है ॥८॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपंप्रतिरूपो बहिश्च ॥ ९

अ०—(यथा) (एकः, अग्निः) विद्युत्स्वरूपः (भुवनम्) भवन्ति भूतानि यस्मिन्स्वयं वा भवत्युत्पद्यते कार्यरूपेण जायतइति भुवनं लोकम् (प्रविष्टः) प्रतिवस्तु व्याप्तः (रूपंरूपम्) यावद्वस्तुरूपम् (प्रतिरूपः) तत्तद्वस्तुस्वरूपः (बभूव) (तथा) (एकः) (सर्वभूतान्तरात्मा) (रूपंरूपम्) (प्रतिरूपः) बभूव (च) सर्वस्थूलवस्तुभ्यः (बहिः) पृथगपि व्योमवद्व्याप्तः ॥

भा०—यथाऽग्निर्विद्युद्रूपेण सर्वस्थूलपदार्थेषु व्याप्तस्तत्तद्वस्तुरूपाद्भिन्नो न लक्ष्यतेऽपितु तत्तत्पदार्थरूपेणैव तत्तत्रावस्थितोऽतिसूक्ष्मत्वात्पृथङ् न ज्ञायते तथैव परमात्मापि सर्वकार्यकारणवस्तुषु व्याप्तोऽतिसूक्ष्मत्वान्नदृश्यते तत्तत्पदार्थस्वरूपेणैव तस्मिंस्तस्मिन्नवतिष्ठते यच्च पदार्था न सन्ति तत्रापि परमात्मा व्याप्त आकाशवदनन्तत्वात् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (एकः) एक ही (अग्निः) अग्नि (भुवनम्) सब प्राणियों के आधार वा स्वयं कार्यरूप से उत्पन्न होने वाले संसार में (प्रविष्टः) व्याप्त (रूपं रूपम्) प्रत्येक रूपवान् वस्तु के (प्रतिरूपः) तुल्य रूप वाला (बभूव) हो रहा है (तथा) वैसे (एकः) एक (सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा (रूपंरूपम्) प्रत्येक रूपवान् पदार्थ के साथ (प्रतिरूपः) उसी के जैसे रूपवाला (बभूव) हो रहा है (च) और सब स्थूल पदार्थों से (बहिः) पृथक् भी आकाश के तुल्य व्याप्त है ॥

भा०—जैसे अग्नि विद्युत् रूप से सब स्थूल पदार्थों में व्याप्त भी उस २ वस्तु के रूप से भिन्न नहीं दीखता किन्तु उस २ पदार्थ के रूप से ही उस २ में स्थित अतिसूक्ष्म होने से पृथक् नहीं

जाना जाता वैसे ही परमात्मा भी सब कार्य कारण वस्तुओं में व्याप्त अति सूक्ष्म होने से नहीं दीखता किन्तु उस २ पदार्थ के रूप से उस २ में अवस्थित है और जहां पदार्थ नहीं वहां भी आकाश के तुल्य अनन्त होने से परमात्मा व्याप्त है ॥ ९ ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च १०

अ०—(यथा, एकः, वायुः) (भुवनम् प्रविष्टः) (रूपंरूपम्) (प्रतिरूपः) (बभूव) (तथा,एकः) (सर्वभूतान्तरात्मा) (रूपंरूपम्) प्रतिरूपः (च) (बहिः) सर्वस्मिन् ब्रह्माण्डे सूत्रात्मना व्याप्तः ॥

भा०—यथा वायुः सूक्ष्मरूपेण सर्ववस्तुषु व्याप्तस्तत्तद्वस्तुस्वरूपाद्विलक्षणो नोपलभ्यते तथैव सर्वस्मिन् चराचरे जगति व्याप्तः परमात्मापि तत्तद्वस्तुस्वरूपात्पृथङ्नोपलभ्यते ॥ १० ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (एकः) एक (वायुः) वायु (भुवनम्) संसार में (प्रविष्टः) व्याप्त (रूपंरूपम्) प्रत्येक वस्तु के रूप के (प्रतिरूपः तुल्य रूप वाला (बभूव) होरहा है (तथा) वैसे (एकः) एक (सर्वभूतान्तरात्मा) सब भूतों का अन्तर्यामी (रूपंरूपम्) परमात्मा प्रत्येक वस्तु के रूप के तुल्य (प्रतिरूपः) रूपवाला हो रहा है (च) और (बहिः) सब ब्रह्माण्ड में सूत्रात्मा रूप से व्याप्त है ॥

भा०—जैसे वायु सूक्ष्म रूप से सब वस्तुओं में व्याप्त उस २ वस्तु के स्वरूप से विलक्षण नहीं प्रतीत होता वैसेही सब चरा-

चर जगत् में व्याप्त परमात्मा भी उस २ वस्तु के स्वरूप से पृथक् नहीं प्राप्त होता ॥ १० ॥

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११ ॥

अ०—(यथा) (सर्वलोकस्य) कर्मणि षष्ठी (चक्षुः) दर्शनहेतुः । करण औणादिक उसिः प्रत्ययः (सूर्यः) सन्नपि (चाक्षुषैः) भ्रमान्मिथ्यादर्शनैरशुच्यादिदर्शनैर्वा (बाह्यदोषैः) संसर्गदोषैः (न, लिप्यते) (तथा) (सर्वभूतान्तरात्मा) सर्वप्राणिनामन्तर्यामी (एकः) (बाह्यः) सर्ववस्तुनि व्याप्तोपि तद्दोषैरलिप्तः परमेश्वरः (लोकदुःखेन) संसारोत्पन्नदोषेण (न,लिप्यते) नानुसज्यते ॥

भा०—यथा यतः सूर्यप्रकाशमन्तरा कश्चित्किञ्चिदपि न पश्यति रजन्यामपि चन्द्रादयः सूर्यप्रकाशानुग्रहेणैव किंचिद्दर्शयन्ति तस्मात्सूर्यएव रूपज्ञानमात्रस्य कारणम् । एवंसत्यपि भ्रमादन्यथादर्शनादिजन्यविपरीतफलभाक् सूर्यो न भवति तथैव सर्वजनदृष्टिस्थः परमेश्वरः सूर्यवत्स्वाभाविकशक्त्या सर्वजीवकृत्यं प्रकाशयन्नपि जीवकृतशुभाशुभकर्मफलेन न सम्बध्यते ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(यथा) जैसे (सर्वलोकस्य) सब संसार को (चक्षुः) देखने का हेतु (सूर्यः) हुआ भी सूर्य (चाक्षुषैः) चक्षु से अन्य को अन्य देखने वा मलीन देखने आदि (बाह्यदोषैः) संबन्धी दोषों से (न,लिप्यते) लिप्त नहीं होता (तथा) वैसे (सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी (एकः) एक (बाह्यः) सब वस्तु में व्याप्त भी उस वस्तु के दोष से युक्त न होने वाला परमेश्वर (लोकदुःखेन) संसारी दुःख से (न,लिप्यते) दुःखित नहीं होता ॥

भा०—जैसे जिस कारण सूर्य के प्रकाश विना कोई कुछ भी नहीं देखता रात्री में भी चन्द्रमा आदि सूर्य के प्रकाश की सहायता से ही कुछ २ प्रकाश करते हैं इस कारण सूर्य ही सब रूप ज्ञान का कारण है ऐसा होने पर भी अन्यथा देखने वा प्रतिकूल देखने आदि से हुए विपरीत फल का भागी सूर्य नहीं होता वैसे ही सब मनुष्यादि के हृदय में स्थित परमेश्वर सूर्य के तुल्य स्वाभाविक शक्ति से सब जीवों के कृत्य का प्रकाश करता हुआ भी जीव के किये शुभ अशुभ कर्मफल से सम्बद्ध नहीं होता ॥ ११ ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

अ०—(सर्वभूतान्तरात्मा) (एकः) (वशी) सर्वं स्थावरजङ्गमं वशे तिष्ठति यस्य सः (यः) (एकम्) प्रलयावस्थेतिसूक्ष्मत्वाद्भेदविज्ञानविरहसैकीभूतम् (रूपम्) प्रकृतिरूपं कारणम् (बहुधा) बहुप्रकारकं बहुरूपं कार्यं

स्थूलम् (करोति) उत्पादयति (ये) (धीराः) ध्यानशीला विद्वांसः (तम्) (आत्मस्थम्) स्वात्मन्यन्तर्यामिरूपेण व्याप्तं ध्याननिर्मथनाभ्यासेन (अनुपश्यन्ति) आचार्योपदेशानन्तरं पश्यन्ति (तेषाम्) (शाश्वतम्) सनातनं मुक्त्याख्यम् (सुखम्) भवति (नेतरेषाम्) ॥

भा०—ये सर्वस्रष्टारं सर्वनियन्तारं सर्वस्य हृदि संस्थितं जगदीश्वरमेव स्वात्मन्यवस्थितं योगाभ्यासेन ध्यायन्ति तएव सनातनसुखभागिनो जायन्ते नेतरे मूढाः ॥१२॥

भाषार्थः—(सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी (एकः) एक (वशी) सब चराचर जगत् जिस के वश में है वह तथा (यः) जो (एकम्) प्रलयावस्था में अति सूक्ष्म होने से पृथक् २ भेद जिस का नहीं जाना जाता ऐसे एक रूप (रूपम्) प्रकृति नामी कारण को (बहुधा) बहुत प्रकार का कार्यरूप स्थूल (करोति) उत्पन्न करता (ये) जो (धीराः) ध्यानशील विद्वान् लोग (तम्) उस (आत्मस्थम्) अपने आत्मा में अन्तर्यामी रूप से व्याप्त परमात्मा को ध्यान के अभ्यास से (अनुपश्यन्ति) गुरु से उपदेश पाकर देखते हैं (तेषाम्) उन को (शाश्वतम्) सनातन मुक्ति का (सुखम्) सुख होता है (नेतरेषाम्) अन्यों को नहीं ॥

भा०—जो लोग सब के स्रष्टा सब के नियन्ता और सब के हृदय में स्थित परमात्मा जगदीश्वर का ही अपने आत्मा में योगाभ्यास से ध्यान करते हैं वे ही सनातन नित्य सुख के भागी होते हैं अन्य मूर्ख नहीं ॥ १२ ॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तमा-

तमस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १३ ॥

अ०—(अनित्यानाम्) उत्पत्तिधर्मकाणां विनाशवतां कार्यवस्तुघटपटादिपदार्थानां मध्ये (नित्यः) अविनाशी (चेतनानाम्) जीवात्मनां नित्यानामपि मध्ये (चेतनः) सदैव चैतन्यस्वरूपएव। चेतनानामपि चेतयिता (बहूनाम्) परिच्छिन्नानां चराचरवस्तूनां मध्येऽपरिच्छिन्नोऽनएव (एकः) एवंभूतः (यः) (कामान्) कर्मफलानि (विदधाति) यथायोग्यं ददाति (ये धीराः) विद्वांसः (तम्, आत्मस्थम्, अनुपश्यन्ति) श्रवणमननानन्तरं ध्यायन्ति (तेषाम्) (शाश्वती) (शान्तिः) भवति (नेतरेषाम्) अज्ञानाम् ॥

भा०—यच्चैतन्यमाश्रित्य चेतना जीवा अपि स्वकार्यं कर्त्तुं प्रभवन्ति तमेकं नित्यं कर्मफलप्रदमात्मन्यवस्थितं जगदीश्वरं ये ध्यायन्ति तएव निरन्तरं शान्ता भवन्ति नातो भिन्ना बहिर्मुखा विषयानन्दलिप्साः ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(अनित्यानाम्) उत्पत्ति धर्मक होने से विनष्ट होने वाले कार्य रूप घटपटादि पदार्थों के बीच (नित्यः) अविनाशी (चेतनानाम्) चेतन, नित्य, जीवात्माओं के बीच भी (चेतनः) सदा चेतनता रूप ही अर्थात् चेतनों को भी चेतन करने वाला (बहूनाम्) परिच्छिन्न चराचर वस्तुओं में (एकः) एक अपरिच्छिन्न परमेश्वर है (यः) जो जीवों के लिये (कामान्) यथायोग्य कर्मों का फल (विदधाति) देता है (ये) जो (धीराः) विद्वान् लोग (तम्) उस (आत्मस्थम्) अपने आत्मा में स्थित पर-

आत्मा को (अनुपश्यन्ति) गुरुआदि से सुने विचारे के अनुकूल ध्यान करते (तेषाम्) उन को (शाश्वती) सदा निरन्तर ठहरने वाली (शान्तिः) शान्ति प्राप्त होती है (न,इतरेषाम्) किन्तु अन्य अज्ञानियों को नहीं ॥

भा०—जिस की चेतनता का आश्रय ले कर चेतन जीवात्मा भी अपने कार्य करने को समर्थ होते हैं उस कर्मफलदाता अपने आत्मा में अवस्थित एक नित्य वर्त्तमान जगदीश्वर का जो लोग ध्यान करते हैं वे ही निरन्तर शान्त होते हैं इस से विपरीत विषयों का आनन्द भोगने में जिस बाह्य वृत्ति रखने वाले लम्पट पुरुष शान्त नहीं होते ॥ १३ ॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम्। कथन्नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा॥ १४॥

अ०—नचिकेता आहः—(तत्.एतत्) इत्येवं प्रकारेण (अनिर्देश्यम्) अङ्गुल्यादिसंकेतेन निर्देष्टुमशक्यम् (परमम्,सुखम्) सर्वोत्तमसुखमयं ब्रह्म भवादृशा विद्वांसः (मन्यन्ते) (तत्) ब्रह्म (किमु) (भाति) प्रकाशहेतु भवति (वा) आहोस्वित् (विभाति) प्रकाशकं भवति। एतद्वयम् (कथन्नु) (विजानीयाम्) तथा ब्रूहीति शेषः ॥

भा०—उपदेशका गुरवोपि तदेतद्ब्रह्मेत्यादिशब्दैरेव व्याचक्षते न कश्चिन्निर्देशेन दर्शयतीत्थंभूतमेव ब्रह्मास्ति तदहं कथं बुध्येय किं तत्सूर्यादिवत्प्रकाशकमाहोस्विन्न॥१४॥

भाषार्थः—नचिकेता फिर बोला कि—(तत्,एतत्) वह यह है (इति) इस प्रकार (अनिर्देश्यम्) अङ्गुलि आदि उठा कर जिसका बताना नहीं होसकता (परमम्,सुखम्) सर्वोत्तम सुख स्वरूप ब्रह्म को आप जैसे विद्वान् लोग (मन्यन्ते) मानते हैं (तत्) वह ब्रह्म (किम्) क्या (भाति) प्रकाश का हेतु होता (वा) अथवा (विभाति) प्रकाशक होता है यह मैं (कथन्नु) कैसे (विजानीयाम्) जानूं वैसा आप कहिये ॥

भा०—उपदेशक गुरु लोग भी वह यह ब्रह्म है इत्यादि शब्दों से ही व्याख्यान करते हैं किन्तु कोई प्रत्यक्ष नहीं दिखाता कि ऐसा वा यही ब्रह्म है। सो मैं कैसे जानूं क्या वह सूर्यादि के तुल्य कोई तेजस प्रकाशक है वा नहीं ? ॥ १४ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १५ ॥

अ०-(तत्र) तस्मिन् ब्रह्मणि (न) (सूर्यः) (न) (चन्द्रतारकम्) चन्द्रश्च तारकाश्चेति द्वन्द्व एकवत् (भाति) (इमाः) प्रत्यक्षाः (विद्युतः) चाक्षुषतेजोऽभिभावुका अपि (न, भान्ति) तर्हि (अयम्) भौतिकः पार्थिवः (अग्निः) (कुतः) भायात् किन्तु (तमेव) (भान्तम्) प्रकाशयन्तम् (सर्वम्) सूर्यादिकम् (अनुभाति) तद्दत्तप्रकाशमाप्यैव प्रकाशते (तस्य) परमेश्वरस्य (भासा) दीप्त्या (इदम्) (सर्वम्) सूर्यादि (विभाति) विस्पष्टं प्रकाशते ॥ इति पञ्चमी वल्ली समाप्ता ॥

भा०—यद्दिदं सूर्यादिप्रकाशकं जगत्प्रत्यक्षतयोपलभ्यते तद्भाति तेषु च स्वतः प्रकाशो नास्ति किन्तु परमात्मा तान् सूर्यादीन् भाति स्वदत्तेन तेजसा प्रकाशयति सूर्यादयश्च तं प्रकाशयितुमशक्ताः। तस्य ततोऽधिकतेजस्कत्वात्। अतएव ब्रह्मज्ञानोपायेषु सूर्यादेः प्रकाशस्योपयोगो नापेक्षतेऽपितु बाधकं भवति ॥१५॥

भाषार्थः—(तत्र) उस ब्रह्म में (न) न (सूर्यः) सूर्य (न) न (चन्द्रतारकम्) चन्द्रमा और तारे (भाति) प्रकाश करते तथा (इमाः) ये प्रत्यक्ष चमकने और (विद्युतः) नेत्र सम्बन्धी तेज को दबाने वाली भी बिजुलीं (न,भान्ति) प्रकाश नहीं करती तो (अयम्) यह पृथिवी पर प्रसिद्ध भौतिक (अग्निः) अग्नि (कुतः) कहां से प्रकाश करे क्योंकि सूर्य का प्रकाश अग्नि से प्रबल है और भौतिक अग्नि का कारण भी सूर्य है जब कारण का उस में प्रकाश नहीं पहुंचता तो कार्य का क्या पहुंचेगा ?। किन्तु (तमेव) उसी (भान्तम्) स्वयं प्रकाशमान हुए के पीछे (सर्वम्) सब सूर्यादि (अनुभाति) उस के दिये प्रकाश को पाकर ही प्रकाशित होते हैं (तस्य) उस परमेश्वर की (भासा) दीप्ति से (इदम्) यह (सर्वम्) सब सूर्यादि (विभाति) स्पष्टता पूर्वक प्रत्यक्ष प्रकाश करते हैं ॥

भा०—जो यह सूर्यादि प्रकाशक जगत् प्रत्यक्षता से प्राप्त होता वही प्रकाशित है उन में अपना स्वतः प्रकाश नहीं किन्तु परमात्मा उन सूर्यादि को अपने दिये तेज से प्रकाश करता है और सूर्यादि उस को प्रकाशित नहीं कर सकते क्योंकि परमेश्वर उन से अधिक तेज वाला है इसी से ब्रह्मज्ञान के उपायों में सूर्यादि के प्रकाश का उपयोग अपेक्षित नहीं किन्तु नेत्रद्वारा देखने से ध्यान बटकर बाधा होती है ॥१५॥ यह पांचवीं वल्ली समाप्त हुई ॥

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वै तत् ॥१॥

अ०—(ऊर्ध्वमूलः) ऊर्ध्वमुपरिष्टान्मूलमस्य सः (अवाक्शाखः) अवागधस्ताच्छाखा यस्य सः (एषः) प्रत्यक्षो मनुष्यदेहः प्रवाहेण (सनातनः) (अश्वत्थः) श्वः स्थास्यति नवेति संशयापन्नोऽश्वत्थवृक्षवत्स्वरूपेणानित्यः । यदस्य मूलस्यापि कारणम् (तदेव) (शुक्रम्) शुक्लं निर्मलं निष्कलङ्कम् (तत्) (ब्रह्म) बृहत् (तदेव) (अमृतम्) अविनश्वरम् । शास्त्रेषु विद्वद्भिः (उच्यते) (तस्मिन्) ब्रह्मणि (सर्वे) (लोकाः) पृथिव्यादयः (श्रिताः) धृताः (तत्,उ) ब्रह्म (कश्चन) लोकः पुरुषो वा (न,अत्येति) नोल्लङ्घयति (एतद्वै तत्) तदेतदेव ब्रह्मास्ति ॥

भावार्थः-यथाऽश्वत्थादिवृक्षविशेषाणामुपरिष्टाच्छाखा अधस्ताच्च मूलं भवति तस्माद्विपरीतोऽयं देहवृक्षो यस्य मूलमुपरि शाखाऽधः स्वरूपेणायमनित्यः सृष्टिप्रवाहेण नित्यश्च । अस्य सर्वस्य स्रष्टारमस्मिन्नेव देहेवस्थितं शुद्धमविनाशिनं सर्वाधारं सर्वोपरिविराजमानं ज्ञातुं यः प्रयतते सएव दुःखसागरं तरति ॥ १ ॥

भावार्थः—(ऊर्ध्वमूलः) जिस की जड़ ऊपर को और (अवाक्शाखः] नीचे को डाली हैं ऐसा (एषः) यह प्रत्यक्ष मनुष्य शरीर

प्रवाह से (सनातनः) सनातन अनादि (अध्रुवत्थः) कल ठहरे गा वा नहीं इस प्रकार जिस का जीवन अनित्य है अर्थात् पीपल वृक्ष के समान स्वरूप से अनित्य है। जो इस के मूल शिर वा प्रकृति आदि का भी कारण है (तदेव) वही (शुक्रम्) शुद्ध निष्कलङ्क निर्मल (तत्,उ) वह (ब्रह्म) बड़ा (तदेव) वही (अमृतम्) अविनाशी है ऐसा विद्वान् लोगों ने शास्त्रों में (उच्यते) कहा है (तस्मिन्) उस ब्रह्म में (सर्वे) सब (लोकाः) पृथिव्यादि लोक (श्रिताः) धारण किये हुए हैं (तत्) उस ब्रह्म को (कश्चन) कोई लोक वा पुरुष (न,अत्येति) उल्लङ्घन नहीं करता (एतद्वैतत्) वह यही ब्रह्म है॥

भा०-जैसे पीपल आदि वृक्षों की ऊपर को शाखा नीचे को जड़ होती है उस से विपरीत यह शरीर रूप वृक्ष है जिस की शिर रूप जड़ ऊपर और बाहु अङ्गुली गोड़ आदि शाखा (डाली) नीचे को बनी हैं यदि शिर नीचे कर के उलटा खड़ा किया जाय तो ठीक वृक्षाकार जान पड़ता है। सो देह रूपवृक्ष स्वरूप से अनित्य और सृष्टि प्रवाह से नित्य है। इस विलक्षण कार्य के रचने वाले इसी देह में व्याप्त शुद्ध अविनाशी सब के आधार सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर के जानने का जो प्रयत्न करता है वही दुःख सागर के पार होजाता है॥ १॥

यदिदं किंच जगत्सर्वं प्राणएजति निःसृतम्। महद्भयं वज्रमुद्यतं यएतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ २॥

अ०—प्रलयानन्तरं परमेश्वरादेव (निःसृतम्) उत्पन्नम् (यत्,इदम्) (किञ्च) अनन्तपरमात्मापेक्षयाऽल्पं तुच्छं च (जगत्) अस्ति तत् (सर्वम्) (प्राणे) प्रकृष्टतयाऽनिति जीवयति सर्वान् प्राणिनइति सर्वस्य जीवन

मूल्यप्राप्ति स्वीकार ॥

१९०—स्वामी अच्युतानन्द जी	जोधपुर	।≈)
१४७ बाबा ज्ञान दास जी	फीरोजपुर	२)
७१—बा० गोपाल सहाय जी	,,	२)
३४—श्री राजाराम जी	इन्दरख	२)
१४४—पं० रामचन्द्र जी सौदागर	होश्यारपुर	२)
१३९—बा० देवराज जी	जालन्धर	२)
१४०—स्वामी प्रकाशानन्द सरस्वती जी	,,	१॥)
१०७—बा०—कुंजविहारी लाल जी	अमरावती	२)
१३८—बा० कृष्ण सिंह जी	मौलम	२)
१५९—बा० मानसिंह जी	एबटाबाद	२)
१६८—बा० निहालचन्द जी	फीरोजपुर	२)
१४६—श्री घनश्याम दास जी	आगरा	२)
१५०—श्री ज्येठमल शर्मा	हैदराबाद	२)
१५१—पं० शीतल प्रसाद जी	जोधपुर	२)
१५५—बा० हरदेव प्रसाद जी	समस्तीपुर	२)

यह दाम सब अप्रेल ९० में आया है ॥

सूचना ॥

सब सज्जन पाठक महाशयों को ज्ञात हो कि यह एकादशवां अङ्क उपनिषद् का आप की सेवा में आता है अब छठे अङ्क में कठोपनिषद् पूरा होजायगा ७ अङ्क से प्रश्नोपनिषद् का भाष्य आवेगा जिन के पास कोई अङ्क खण्डित हो अभी मगालेवें पीछे पुस्तक बन जाने पर फुटकर कठ का अङ्क जो बचेगा वही मिल सकेगा। और जिन महाशयों ने अब तक मूल्य न दिया हो वे यदि छठे अङ्क निकलते तक न भेज देंगे तो अङ्क ६ न भेजा जायगा पुस्तक खण्डित रह जायगा। इस लिये प्रथम भेज देवें ॥

अङ्क छठा पन्द्रह दिन पीछे सब महाशयों के पास पहुंच जायगा ॥

पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

वाजसनेयोपनिषद् संस्कृत भाषावृत्तिसहित ⅘, तलवकारोपनिषद् संस्कृत भाषावृत्ति सहित ।, तीर्थविषय ⅘, विवाह व्यवस्था ।, हिताहित संवाद ⅘, न्यायदर्शन मूल सूत्रपाठ ।, हिन्दी का प्रथम पुस्तक ।, प्रेमप्रभाव ।॥ कुमारी भूषण ।, शास्त्रार्थ खुर्जा ⅘, आर्यसिद्धान्त प्रथम द्वितीय भाग २४ अङ्क स्वर्णाक्षर युक्त जिल्द सहित २।, आर्यसिद्धान्त प्रथम द्वितीय भाग २४ अङ्क विनाजिल्द २, इन पुस्तकों का डाक महसूल पृथक् ग्राहक को देना होगा जो एक २ मँगावेंगे उन को आर्यसिद्धान्त कोड़ के प्रत्येक पर ।॥ डाकव्यय देना होगा जो महाशय इन में से ५, रु० नगद तक के पुस्तक लेंगे उन को २०, रु० सैकड़े के हिसाब से कमिशन के पुस्तक अधिक दिये जावेंगे अर्थात् ५, में ६, रु० के पुस्तक मिलेंगे ॥

दिग्विजयार्क द्वितीय खण्ड ॥, इतिहास तिमिरनाशक तृतीय खण्डसार ⅘, आर्यसमाज परिचय ।, स्वधर्मरक्षा ।, गोरक्षार्थ दीपिका ⅘, करपल्लवी ।, जड़तत्त्व विज्ञान १ भाग ⅘, जड़तत्त्व विज्ञान २ भाग ⅘, सन्धिविषय ⅘, विभक्तियों का वर्णन ⅘, अव्ययार्थ ।, सर्वनाम जन्त्री ।, ये छः पुस्तक बा० मथुरादास जी सुपर वाइजर के बनाये हैं ॥

ये सब पुस्तक बाहर के कमिशन पर विक्रयार्थ हैं प्रत्येक पर डाकव्यय ।॥ है कई पुस्तक इकट्ठे लेने पर डाकव्यय कम लगेगा इन पर कमिशन न मिलेगा जिन महाशयों को लेना हो मुझ से मँगालेवें ॥

शास्त्रार्थ खुर्जा अभी नवीन छपा है ⅘॥

भीमसेन शर्मा—सम्पादक आर्यसिद्धान्त—प्रयाग

गुरु विरजानन्द दण्डी
B.9.45

ओ३म्

॥ छपनिषद्भाष्यम् ॥

श्री परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना

शिष्येण औसरेण धर्मणा

श्रीकोपकारस्य संस्कृतसाहित्यवाटयर्थं-

भाषया च व्याख्यातम् ॥

भाग १ ॥ मासिकपत्रं १ ॥ खण्ड १०

ता० १ सितंबर द्वितीयसंस्करण संवत् १९४७

मासिक मूल्य डाकव्यय सहित ७)

इस की रजिष्टरी कराई गई है किसी को आपने

वा अधिकार नहीं है।

श्रीकोपकारक कार्यालय में मुद्रित हुआ।

॥ मूलसंस्कृतम् ॥

सन् १८९०

उपनिषद्भाष्य के नियम ॥

१—इस में टाटिल से भिन्न डिमाई के चार फारम अर्थात् ३२ पृष्ठ व्याख्या प्रत्येक अङ्क में रहेगी ॥

२—यह उपनिषद्भाष्य का मासिक अंक तारीख १ दिसम्बर सन् १८८९ से प्रतिमास की पहिली तारीख को निकलता है ॥

३—इस का वार्षिक मूल्य सर्वसाधारण की सुगमता के लिये डाकव्यय सहित ३) रक्खा है धर्मात्मा महाराजा वा रईस लोग कृपा दृष्टि से जो कुछ अधिक देंगे वह सहायता में धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया जाया करेगा ॥

४—यह पत्र ग्रन्थ कर्त्ता का स्वत्व समझा जायगा लाभ होने पर लाभ में से दशांश श्रीमद्दयानन्दविश्वविद्यालय पाठशाला प्रयाग को धर्मार्थ दिया जाया करेगा ॥

५—मूल्य सब से वर्ष के प्रारम्भ में लिया जायगा जो महाशय नमूना देखने के लिये १ अंक मँगवावेंगे उन को) भेजने से नमूने का अंक भेजा जायगा। उपनिषद्भाष्य सम्बन्धी चिट्ठी पत्र वा मनीआर्डर आदि भीमसेन शर्मा सम्पादक आर्यसिद्धान्त—प्रयाग के नाम भेजा करें ॥

भीमसेन शर्म्मा

ओ३म
गुरु विरजानन्द दण्डी
संदर्भ पुस्तकालय
दयानंद महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र
वर्गीकरण नम्बर .....
पु. परिग्रहण क्रमांक 2327

किमपि वस्तु परं प्रकृष्टं यस्मात् तन्निरतिशयम् (इति) प्रश्नसमाप्तिसूचनार्थः ॥

भा०—उत्तममध्यमनिकृष्टत्रिविधोपासनैस्तादृशमेव त्रिविधफलमुपासकोऽवाप्नोति सर्वोत्तमोपासनया योगाभ्यासेन च जरामृत्युभयादिजन्यविकारशून्यं सर्वस्मात्सूक्ष्मं नित्यमुक्तं ब्रह्म योगिभिः प्राप्यते ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(सः) वह योगी (विद्वान्) विद्यावान् ज्ञानी (ऋग्भिः) ऋग्वेद के अभिप्राय रूप वाणी से हुई स्तुतियों से (एतम्) इस प्रत्यक्ष मनुष्य लोक को (यजुर्भिः) यजुर्वेद के अभिप्राय रूप मानस कर्मों से (अन्तरिक्षम्) चन्द्रमा आदि लोक को (सामभिः) सामवेद के अभिप्राय रूप प्राणायामादि ज्ञान सम्बन्धी कर्मों से (यत्) जिस को (कवयः) पण्डित विद्वान् लोग ही (वेदयन्ते) जानते हैं (तत्) उस परोक्ष निर्देश न करने योग्य ब्रह्मलोक अर्थात् (तम्) उस तीनों लोक को (ओङ्कारेण, एव आयतनेन) ओङ्कार रूप शब्द वाच्य अर्थ की उपासना रूप साधन से ही (अन्वेति) प्राप्त होता है वह ब्रह्म कैसा है सो कहते हैं—(यत्, तत्) जिस में इन्द्रियों की गति न होने से संकेत नहीं हो सकता (शान्तम्) शान्तस्वरूप जिस में किसी प्रकार का विकार नहीं अर्थात् अवस्था भेद नहीं इसी लिये (अजरम्) वृद्धावस्था रहित (अमृतम्) मृत्यु रहित है इसी से (अभयम्) निर्भय है (च) और (परम्) जिस से सूक्ष्म वा उत्तम परे कोई नहीं (इति) यह प्रश्न समाप्त हुआ ॥

भा०—उत्तम मध्यम और निकृष्ट तीन प्रकार की उपासना से वैसे ही तीन प्रकार के फल को उपासक पाता है। सर्वोत्तम उपासना और योगाभ्यास से जीर्णावस्था मृत्यु और भय आदि से होने वाले विकारों से रहित सब से सूक्ष्म नित्य मुक्त ब्रह्म को योगी जन प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इति पञ्चमः प्रश्नः समाप्तः ॥

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ। भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत। षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ? तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद। यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति समूलो वाएष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुं स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज। तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुषइति ॥ १ ॥

अ०—अथ शैव्यकृतप्रश्नस्योत्तरश्रवणानन्तरं सुकेशा नामको भारद्वाजो भरद्वाजस्यापत्यमेनं पिप्पलादमृषिं ह स्फुटमिदं पप्रच्छ—हे भगवन्! कौसल्यः कोसलानां राजा राजपुत्रो हिरण्यनाभनामको मामुपेत्यैतं वक्ष्यमाणं प्रश्नमपृच्छत। हे भारद्वाज! त्वं षोडशकलं षोडश कला अस्मिन्नस्य वा स्वामिनः सन्ति तं पुरुषं पूर्णं व्याप्तं परमात्मानं वेत्थ जानासि? तं कुमारमहमेतदब्रुवं नाहमिमं पुरुषं वेद जानामीति। यद्यहमिमं त्वया पृच्छ्यमानमात्मानमवेदिषं तर्हि पूर्णशिष्यगुणवते ते

तुभ्यं कथं नावक्ष्यमपित्ववश्यमेव वक्ष्येयम्। यः पुरुषो जानन्नप्यनृतमभिवदति सएषो वै निश्चयेन समूलः परिशुष्यति तस्मादहमनृतं शास्त्रविरुद्धं वक्तुं नार्हामि न योग्यो भवामि। इत्येवं प्रकारेण मद्वचः श्रुत्वा स राजपुत्रस्तूष्णीँ रथमारुह्य प्रवव्राज मत्सनीडात्स्वस्थानं गतवान्। सोऽहं तं पुरुषं त्वां पृच्छामि क्वासावस्तीति ॥

भा०—सुकेशा वदति यद्यहमेव न जानामि तर्हि कथमन्यस्मा उपदिशेयमिति। याथार्थ्येन यत्स्वयं न जानीयान्न तदन्यस्मा उपदिशेत्। अनृतवादी समूलो विनश्यति। अस्मिन्नन्तिमप्रश्ने सामान्येन जीवात्मनो विशेषेण च ब्रह्मणः स्वरूपमेव निरूप्यते ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब शौर्य्य ऋषिकृत प्रश्न का उत्तर सुनने पश्चात् (सुकेशा) सुकेशा नामक (भारद्वाजः) भरद्वाज के पुत्र ने (एनम्) इन पिप्पलाद ऋषि से (ह) प्रकट (पप्रच्छ) पूछा कि हे (भगवन्) गुरो एक समय (कौसल्यः) कोसल देश के राजा (राजपुत्रः) राजकुमार ने (माम्) (उपेत्य) मेरे पास आकर (एतम्,प्रश्नम्) इस प्रश्न को (अपृच्छत) पूछा कि हे (भारद्वाज) भारद्वाज तुम (षोडशकलम्) जिस सर्वोत्तम परमात्मा की सोलह कला हैं वा जिस जीवात्मा के साथ सोलह कला रहती हैं उस (पुरुषम्) पूर्णव्याप्त परमेश्वर वा जीवात्मा को (वेत्थ) जानते हो ? (तं,कुमारम्) उस राजपुत्र से (अहम्) मैंने यह (अब्रुवम्) कहा कि (नाहमिमं, वेद) मैं इस को नहीं जानता (यद्यहमिममवेदिषम्) यदि मैं तुम्हारे पूछे इस आत्मा को जानता होता तो पूर्ण शिष्य के गुणों वाले (ते) योग्यता के पात्र तुम्हारे लिये (कथम्) क्यों (न,अवक्ष्यम्) न कहता किन्तु अवश्य तुम को उपदेश करता क्योंकि मैं मानता हूं कि (एषः) यह पुरुष (वै) निश्चय कर (समूलः) धन

पुत्रादि सहित (परिशष्यति) सूखता-नष्ट होजाता है (यः) जो (अनृतम्) शास्त्र से विरुद्ध जान कर झूठ (अभिवदति) बोलता है (तस्मात्,नाहोमि,अनृतं,वक्तुम्) इस लिये मैं झूठ नहीं बोल सकता अर्थात् मैं कदापि झूठ न बोलूंगा (इति) ऐसा मेरा कथन सुन कर (सः) वह राजपुत्र (तूष्णीम्) चुपचाप (रथमारुह्य) रथ पर चढ़ कर (प्रवव्राज) मेरे समीप से अपने स्थान को चलागया। इस लिये (तम्) उस आत्मा को (त्वा) आप से (पच्छामि) पूछता हूं कि (असौ) वह (पुरुषः) आत्मा (क) कहां है (इति) ऐसा आप कहिये ॥

भा०—सुकेशा ऋषि कहते हैं कि जब मैं ही नहीं जानता तो अन्य के लिये कैसे उपदेश करूं। शास्त्रकारों की आज्ञा है कि जिस बात को यथार्थ रूप से आप न जाने उस को अन्य के लिये भी उपदेश न करे। मिथ्यावादी निर्मूल नष्ट हो जाता है। इस अन्तिम प्रश्न में सामान्य कर जीवात्मा और विशेष कर ब्रह्म के स्वरूप का ही निरूपण किया जाता है ॥ १ ॥

तस्मै सहोवाच इहैवान्तः शरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ॥ २ ॥

अ०—हे सोम्य शान्त्यादिगुणयुक्त इहैवान्तःशरीरे व्याप्तः स पुरुषः पूर्णो जीवात्मा परमात्मा च योगिभिर्ध्यानेन प्राप्यते ज्ञायते च यस्मिन्नेता वक्ष्यमाणाः षोडशकला भागाः प्रभवन्ति समर्था भवन्ति-उत्पद्यन्ते वा। इत्येवं स पिप्पलादस्तस्मै भारद्वाजाय ह प्राकट्येनोवाच ॥

भा०—ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। इतिभगवद्गीतासु

प्रतिपादनादीश्वरः कलाभिः सर्वान् जन्तून् भ्रामयन् हृदि तिष्ठति जीवात्मानमपि व्याप्नोति । यद्यपि सर्वत्र चराचर एकरसतया परमात्मा व्याप्तस्तथापि दर्पणे प्रतिबिम्बमिव शुद्धान्तःकरणे ज्ञानिभिरेवोपलभ्यत इति मत्वाऽन्तःशरीरएव स्थितिर्दर्शिता । ज्ञानरूपं साधनं च शरीरएवास्ति ॥२॥

भाषार्थः—हे (सोम्य) शान्ति आदि गुणयुक्त सुकेशा (इहैव, अन्तःशरीरे) यहीं शरीर के भीतर (सः,पुरुषः) वह जीवात्मा वा पूर्णव्याप्त परमात्मा योगी लोगों से योगाभ्यास ध्यानादि कर के प्राप्त किया वा जाना जाता है (यस्मिन्,एताः) जिस में ये आगे कही (षोड़श) सोलह (कलाः) कार्य जगत् के अंश (प्रभवन्ति) जीव में समर्थ होते और परमात्मा में उत्पन्न होते हैं (इति) इस प्रकार (तस्मै) उस सुकेशा से (सः) वे पिप्पलाद (उवाच,ह) बोले ॥

भा०—भगवद्गीता में लिखा है कि सब प्राणियों को कल में बैठाकर जैसे कोई घुमावे वैसे कार्यजगत् शरीरादि के साथ उन के हृदय में स्थित हुआ परमेश्वर चला रहा है अर्थात् कर्मफल भुगाता है और जीवात्मा में भी व्याप्त रहता है । यद्यपि परमात्मा सब चराचर जगत् में एकरस व्याप्त है तो भी दर्पण में छाया के तुल्य शुद्ध अन्तःकरण में ज्ञानी लोगों को ही प्राप्त होता है । ऐसा मानकर ज्ञान में स्थिति दिखाई गयी है और ज्ञान रूप साधन भी शरीर में ही रहता है ॥ २ ॥

स ईक्षाञ्चक्रे कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ३ ॥

अ०—स जीवात्मा सर्गारम्भईक्षाञ्चक्र आलोचितवान्—अहं कस्मिन्नुत्क्रान्ते निर्गतेऽस्मात्कलेवराद्उत्क्रान्तो निस्सृतो भविष्यामि वाऽथवा कस्मिन् प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीत्येवमचिन्तयत् ॥

भा०—इदमीक्षणं जीवात्मन्येव सम्भवति नतु परमात्मनि। सर्वव्यापकपरेशस्य निर्गमप्रवेशयोरसम्भवात्। यद्यपि गतद्वितीयमंत्रे सामान्येनात्मद्वयस्यापि सम्भवात्प्रयोजनवत्त्वाच्च समावेशोस्ति तथापि कलानामुत्पत्तिप्रस्तुत्रे चतुर्थमंत्रे परमात्मन उपयोगो न्याय्यः। अस्मिन्प्रश्ने षोड़शकलासम्बद्ध आत्मा प्रष्टव्यो वक्तव्यश्चास्ति कलाभिश्च परमात्मजीवात्मनोरुभयोरपि सम्बन्धः। कलानामुत्पत्तिस्थितिप्रलयकर्त्ता परमात्माऽतस्तेन जन्यजनकादिसम्बन्धः स्फुटएव। जीवात्मनश्च निर्गमप्रवेशौ सबलनिर्बलभावः कार्यसाधनासाधने च सर्वं कलाधीनमेवेति कर्त्तृकरणसम्बन्धः प्रधानः। परमेश्वरेण सर्वं जगत्परार्थमेवोत्पादितमिति कला अपि तेनैव जीवात्मकार्यसाधनाय परोपकाराय निर्मिताः। तस्मिन्कलासमुदाये शरीरेऽस्थिते जीवात्मापि तिष्ठति निस्सृते च निस्सरति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(सः) उस जीवात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में (ईक्षाञ्चक्रे) चिन्तन किया कि (अहम्) मैं (कस्मिन्) किस के (उत्क्रान्ते) निकलने पर इस शरीर से (उत्क्रान्तः,भविष्यामि) निकल जाऊंगा (वा) अथवा (कस्मिन्) किस के (प्रतिष्ठिते) प्रतिष्ठित होने से (प्रतिष्ठास्यामि) प्रतिष्ठित होऊंगा (इति) इस प्रकार विचार उपस्थित हुआ ॥

भा०—मैं किस के ठहर ने से ठहर सकता वा किस के निकल ने से निकल जा सकता हूं इस प्रकार की चिन्ता जीवात्मा में हो सकती है किन्तु परमात्मा में नहीं क्योंकि सर्व व्यापक परमेश्वर का निकलना पैठना नहीं बनता अर्थात् असम्भव है अर्थात् आकाश कहीं से निकल गया यह नहीं हो सकता। यद्यपि गत द्वितीय मंत्र में सामान्य कर सम्भव और प्रयोजन होने से दोनों आत्मा का ग्रहण है तो भी कलाओं की उत्पत्ति के प्रसङ्ग से चौथे मंत्र में परमात्मा का उपयोग लिया है और इस में केवल जीवात्मा का ग्रहण है। इस अन्तिम प्रश्न में सोलह कलाओं से सम्बन्ध रखने वाले आत्मा को जानने का प्रश्न वा उत्तर है और कलाओं के साथ परमात्मा जीवात्मा दोनों का सम्बन्ध है। कलाओं की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करने वाला परमात्मा है। इस लिये कलाओं के साथ उस का जन्यजनक सम्बन्ध प्रकट है। और जीवात्मा के निकलने पैठने, सबल निर्बल होने वा कार्य का बनना बिगड़ना सब कलाओं के आधीन है इस लिये कर्त्ता करण वा भोक्ता भोग्य का सम्बन्ध मुख्य है। परमेश्वर ने सब जगत् जीवों के लिये ही बनाया है वैसे कला भी उसी ने जीवात्मा को कार्य सिद्धि के अर्थ बनाई हैं। उस कला समुदाय के शरीर में रहने से जीवात्मा ठहरता और निकलने से निकल जाता है ॥ ३ ॥

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम्। मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च॥ ४॥

अ०—स परोक्षः परमेश्वरः सर्वकलासु प्रधानं सर्वासां कारणभूतं भोक्तृशक्तिप्रधानं जीवनहेतुं प्राणं प्रथम-

मसृजत प्राणात्कारणभूताच्छ्रद्धां सत्येव प्राणे श्रद्धा भवितुमर्हति नासति ततः खमाकाशो वायुर्ज्योतिरग्निरापः पृथिवीति पञ्चभूतानि तेभ्यश्च भौतिकं श्रोत्रादीन्द्रियम् । जातावेकवचनम् । ततो मनइन्द्रियाणां राजा सतीषु प्रजासु राज्ञः सम्भवात् । ततस्तेषां रक्षकमन्नमन्नोपादानाद्वीर्यं सति वीर्ये पराक्रमे तपः सम्भवति तपसि च मन्त्राः प्रयुज्यन्ते कर्म च कर्तुं मन्त्रमन्तरेण विचारमन्तरा न सम्भवति कर्मणा मैथुनादिजन्यचेष्टया शिल्पादिकर्मणा वा लोका जनाः प्राणधारा वोत्पद्यन्ते तेषु च लोकेषु सत्सु व्यवहारसिध्यर्थं नाम च संज्ञापि क्रियते । यथा सतो मांसपिण्डस्य देवदत्तइति संज्ञा क्रियते नासतः ॥

भा०—जीवात्मनां सुखेन कार्यसिद्धिः स्यादिति प्रयोजनमुररीकृत्य परमात्मना प्राणादयः षोडशकलाः क्रमेण निर्मिताः प्रत्यहं धार्यन्ते प्रलयावसरे विनश्यन्तेच । तस्माद् यः कलानामुत्पादकः सएवान्तः शरीरे व्याप्तः पुरुषः परमेश्वरोस्ति ॥४॥

भाषार्थः—(सः) उस परोक्ष परमेश्वर ने सब कलाओं में मुख्य सब के कारणभूत भोक्तृशक्ति के उत्तेजक जीवन के हेतु (प्राणम्) प्राण को प्रथम (असृजत) रचा (प्राणात्) कारण रूप प्राण से (श्रद्धाम्) श्रद्धा को बनाया क्योंकि प्राण के न होने से श्रद्धा नहीं हो सकती तिस पीछे (खम्) आकाश (वायुः) वायु (ज्योतिः) अग्नि (आपः) जल (पृथिवी) पृथिवी ये पांच भूत रचे और उन भूतों से (इन्द्रियम्) कान आदि भौतिक इन्द्रिय तिस पीछे (मनः) इन्द्रियों का राजा मन बनाया क्योंकि पहिले प्रजा हो तब ही उस

का राजा उसी में से हो सकता है फिर इन्द्रिय और मन की रक्षा के लिये (अन्नम्) अन्न बनाया (अन्नात्) अन्न से (वीर्यम्) वीर्य, उस से हुआ बल, बल होने से तप हो सकता और वीर्य की रक्षा के लिये तप करना चाहिये इस कारण वीर्य के पीछे (तपः) तप बनाया पीछे तप के उपयोगी (मन्त्राः) वेदमंत्र बनाये और मंत्र नाम विचार किये विना कर्म नहीं हो सकता इस लिये मंत्र से पीछे (कर्म) कर्म को बनाया कर्म मैथुनादि वा शिल्पादि से (लोकाः) मनुष्य वा पृथिव्यादि बने (च) तथा (लोकेषु) उन लोकों में व्यवहार सिद्धि के लिये (नाम,च) संज्ञा भी बनायी क्योंकि विद्यमान मांस-पिण्ड की देवदत्त इत्यादि संज्ञा की जाती है अविद्यमान की नहीं ॥

भा०—जीवात्माओं की सुख पूर्वक कार्य सिद्धि हो इस प्रयोजन को स्वीकार कर परमेश्वर ने प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रियां, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म लोक और नाम ये सोलह कला अर्थात् कार्य जगत् के अंश क्रम से रचे। इन सोलह कलाओं में सब जगत् आजाता है इन कलाओं को वही धारण करता और प्रलय समय सब कलाओं का नाश करता है इस से जो कलाओं की उत्पत्ति आदि करने वाला है वही शरीर में व्याप्त परमेश्वर है ॥ ४ ॥

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे

पुरुषइत्येवं प्रोच्यते सएषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ५ ॥

अन्वयः—कलानामुत्पत्तिनाशौ परमात्मसकाशादेव जायतइत्यत्र सा प्रसिद्धो दृष्टान्तउच्यते—यथा स्यन्दमाना इमाः प्रत्यक्षा दृश्यमानाः समुद्रायणाः समुद्रोऽयनं स्थित्यधिकरणमासां ता नद्यः समुद्रं प्राप्यास्तमदृश्यभावं गच्छन्ति तदा च तासां नामरूपे भिद्येते । इयं गङ्गेयं यमुनेत्यादिनामानि । इयमीदृशेत्यादि रूपाणि च तत्रैव समाप्यन्ते किन्तु समुद्रइत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टुः परितः सर्वतो दर्शकस्य ज्ञातुः सर्वज्ञस्य स्वामिन इमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषः परमात्मैव स्थित्यधिकरणं यासामिति ताः पुरुषं प्राप्य प्रलयावसरे सूक्ष्माः सत्योऽतं गच्छन्त्यदृश्या भवन्ति तासां नामरूपे तदा भिद्येते पुरुषइत्येवं प्रोच्यते । सएष परमात्मनो विज्ञाता जनोऽकलः शरीरादिरहितोऽतएवामृतो मुक्तो भवति तदेष श्लोकस्तस्य विषयस्य प्रतिपादको वक्ष्यमाणः श्लोकोऽस्ति ॥

भा०—यस्मिन् परमात्मनि सर्वमिदं प्रत्यक्षीभूतं कार्यं जगन्नद्यः समुद्रइव नामरूपविरहं सत्प्रलीयते तं यस्तत्त्वतो जानाति स दुःखान्मुच्यते । अदृश्यसाधर्म्यमाश्रित्यायं दृष्टान्तो नतु जलस्यैव जडचेतनयोः साधर्म्यम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—कलाओं की उत्पत्ति और विनाश परमात्मा से ही होती हैं इस विषय में (सः) यह प्रसिद्ध दृष्टान्त कहा जाता है (यथा) जैसे चलती हुई (इमाः) ये गङ्गादि (नद्यः) नदियां (समुद्रायणाः) समुद्र ही जिन का आधार है वे (समुद्रम्) समुद्र को

(प्राप्य) प्राप्त होकर (अस्तम्) अस्त अदृश्यभाव को (गच्छन्ति) प्राप्त हो जाती हैं (तासाम्) तब उन के (नामरूपे) गङ्गा यमुनादि नाम और श्वेत काला आदि रूप (भिद्येते) मिट जाते हैं किन्तु (समुद्र इत्येवं प्रोच्यते) समुद्र ही यही कहा जाता है। यद्यपि गङ्गा यमुनादि के जलपरमाणुओं का समुद्र में भी अभाव नहीं होता वे स्वरूप से अवश्य भिन्न बने रहते हैं तो भी अदृश्य होने से नाम रूप का भिन्न व्यवहार नहीं होसकता और न स्थूल इन्द्रियों से नाम-रूप भिन्न २ दीख सकते हैं (एवमेव) इसी प्रकार (अस्य) इस (परिद्रष्टुः) सब ओर को ज्ञान रखने वाले सर्वज्ञ सब के स्वामी परमेश्वर की (इमाः) ये (पुरुषायणाः) उत्पत्ति स्थिति प्रलय तीनों दशा में पूर्ण व्याप्त ब्रह्म ही जिस का आधार है ऐसी (षोडश) सोलह पूर्वोक्त (कलाः) कला (पुरुषम्) परमेश्वर को (प्राप्य) प्राप्त होकर (अस्तम्) अस्त अदृश्यरूप (गच्छन्ति) हो जाती हैं अर्थात् प्रलय दशा में सूक्ष्म हुई अदृश्य होकर ब्रह्म के आश्रय रहती हैं तब (तासाम्) उन के (नामरूपे) पृथिवी घट पटादि नाम और रक्त श्वेतादि रूप (भिद्येते) मिट जाते हैं (पुरुष,इत्येवं,प्रोच्यते) परमेश्वर एक रह जाता यही व्यवहार होता है। यद्यपि कारण रूप से पृथिवी आदि सब कलाओं के परमाणु सूक्ष्मावस्था में अवश्य बने रहते हैं तो भी अदृश्य होने से उन के नाम रूप का व्यवहार नहीं रहता। (सएषः) वह प्रसिद्ध आत्मज्ञानी पुरुष (अकलः) शरीर आदि से रहित इसी कारण (अमृतः) मुक्त (भवति) होता है (तदेष,श्लोकः) इस उक्त विषय का प्रतिपादन करने वाला अगला मंत्र है॥

भा०—जिस परमात्मा में यह सब कार्य रूप प्रत्यक्ष जगत् [जैसे समुद्र में नदियां वैसे] नाम रूप रहित होकर लय हो जाता है उस ब्रह्म को जो तत्त्वरूप से जानता है वह दुःख से छूट जाता है। अदृश्य होने वा नाम रूप मिटने मात्र अंश में यह दृष्टान्त है किन्तु जैसे नदी समुद्र का जल २ भी वास्तव में एक है वैसे जड़ जगत् और चेतन ब्रह्म का साधर्म्य नहीं मिल सकता इस कारण इस अंश में दृष्टान्त नहीं समझना चाहिये॥ ५॥

अराइव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः । तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथाइति ॥ ६ ॥

अ०—हे ऋषयः सर्वसाधारणा जिज्ञासवो जना वा रथनाभावराइव यस्मिन् ब्रह्मणि पूर्वोक्ताः षोड़श कलाः प्रतिष्ठिता आश्रिता यदाधाराः सन्ति तं वेद्यं ज्ञातुं योग्यं पुरुषं पूर्णं परेशं यथा ज्ञानी वेद जानाति तथा युष्माभिरपि ज्ञातव्यः । इदानीं पिप्पलाद आशीर्ददाति—हे शिष्याः वो युष्मान् मृत्युर्मा परिव्यथा न व्यथयेदिति । अत्र पुरुषव्यत्ययः ॥

भा०—अत्रापि सर्वाधारत्वद्योतनाय रथनाभिदृष्टान्तो न तु नाभिवदेकदेशित्वं ब्रह्मणः सूचनार्थः । यथा नाभ्याश्रयेणारास्तिष्ठन्ति नह्यारास्ततो विचलन्ति तथैव पृथिव्यादयः सर्वे लोकाः परमात्माश्रयेणैव स्वस्वकक्षायां स्थितास्तेनैव धृतास्ततो न विचलन्ति । तदेवं भूतमात्मतत्त्वं यो विजानाति तं मृत्युर्न व्यथयति । अर्थान्मरणावसरेपि प्रसन्नचेताः सन् मुक्तो भवति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—हे ऋषि लोगो वा सर्वसाधारण जिज्ञासु जनो जैसे (रथनाभौ) (अराइव) रथ के पहिये की पुट्ठी में अरानामक लकड़ी लगी होती हैं वैसे (यस्मिन्) जिस ब्रह्म में पूर्वोक्त सोलह (कलाः) कला (प्रतिष्ठिताः) स्थित वा आश्रित हैं (तं वेद्यं पुरुषम्) उस जानने योग्य पूर्णव्याप्त परमेश्वर को (यथा) जैसे ज्ञानी पुरुष (वेद) जानता है वैसे तुम को भी जानने योग्य है । अब पिप्पलाद

ऋषि आशीर्वाद देते हैं-हे शिष्यो (वः) तुम को (मृत्युः) मृत्यु (मापरिव्यथादिति) पीड़ित न करे ॥

भा०—यद्यपि इस मन्त्र में भी सर्वाधार परमेश्वर को जताने के लिये रथनाभि का दृष्टान्त है किन्तु पृथ्वी के तुल्य ब्रह्म को एक देशी जताने लिये नहीं। जैसे नाभि के आश्रय से अरा ठहरते हैं किन्तु इधर उधर को विचलते नहीं वैसे ही पृथिव्यादि सब लोक परमात्मा के आश्रय से ही अपनी २ कक्षा में उसी ने धारण किये स्थित हैं किस से चलायमान नहीं होते। उस परमात्मा को जो जानता है उस को मृत्यु पीड़ित नहीं करता अर्थात् मरण समय में भी प्रसन्न चित्त हुआ शरीर छोड़ के मुक्त होता है ॥ ६ ॥

तान् होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद नातः परमस्तीति ॥ ७ ॥

अ०—तान् सुकेशादीन् शिष्यान् प्रति पिप्पलादो विषयमुपसंहरन् होवाच—अहमेतावदेवैतत्परं ब्रह्म वेद जानामि। अतः परमन्यः कश्चिज्जानीयादितिशङ्कानिरासायाह नातःपरमस्तीति। अतः परमन्यद् ब्रह्म नास्त्येव ॥

भा०—पिप्पलादो महर्षिर्वदति—बहुना कथनेनैव बोधो न भवत्यपितु स्वल्पेन सारकथनेनैव भवादृशा जानन्ति। यन्मया प्रतिपादितं तदेवाहं परं ब्रह्म जानामि नातः परं कश्चिद्वक्तुमर्हति ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(तान्) उन सुकेशादि शिष्य ऋषियों के प्रति विषय को समाप्त करते हुए पिप्पलाद ऋषि (होवाच) बोले कि (अहम्) मैं (एतावदेव) इतना ही (एतत्) इस (परं,ब्रह्म) पर ब्रह्म को (वेद) जानता हूं यदि कोई शंका करे कि इस से परे अन्य कोई जाने सो नहीं (अतः परम्) इस से परे (न,अस्ति) अन्य ब्रह्म नहीं है ॥

भा०—पिप्पलाद महर्षि कहते हैं कि बहुत कहने वा उपदेश से बोध नहीं होता किन्तु सार रूप थोड़े ही कथन से आप जैसे लोग जानलेते हैं जिस का मैंने प्रतिपादन किया है उसी पर ब्रह्म को मैं जानता हूं इस से परे कोई नहीं कह सकता ॥ ७ ॥

ते तमर्चन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति। नमः परमऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः ॥ ८ ॥

अ०—ते सुकेशाद्य ऋषयः प्राप्तविद्योपकारस्य प्रत्युपकारमपश्यन्तस्तं पिप्पलादमर्चन्तः शिरसि पुष्पाञ्जलिदानेन शिरसा तत्पादयोः प्रणामादिना च पूजयन्तः स्तुवन्ति। त्वं हि नोऽस्माकं पिताऽविद्यादिक्लेशजन्यपीडातो रक्षकोऽसि यस्त्वमविद्यायाः सरितः परं पारं तारयसि नास्ति भवत्तारणे निमज्जनभयम्। इत्यादि प्रकारै स्तुवन्ति स्म। नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्य इत्येवं पिप्पलादाय पुनःपुननमस्कुर्वन्तिस्म। द्विर्वचनं प्रश्नसमाप्तिसूचकम् ॥

भा०—यः स्वोपकारं कुर्यात्तस्य प्रत्युपकारः—कार्यइत्येव कृतज्ञत्वम्। पिप्पलादेन च सुकेशादीनां सर्वदुःखान्निवृत्तिरूपो महानुपकारः कृतस्तस्य प्रत्युपकारमन्यमपश्यन्तः कृतज्ञत्वं सूचयन्ति। एवमेव गुरोर्विद्यामादाय सर्वैः कृतज्ञता कार्या प्रत्युपकारश्च ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(ते) वे सुकेशादि ऋषिजन विद्याप्राप्ति—ब्रह्मज्ञान-रूप उपकार का प्रत्युपकार करने में अपना सामर्थ्य न देखते हुए (तम्) उन पिप्पलाद ऋषि को (अर्चन्तः) शिर पर पुष्प वर्षाने और पगों में शिर धर के प्रणाम आदि करने से पूजा करते हुए स्तुति करते हैं कि (त्वंहि) आप ही (नः) हमारे (पिता) अविद्यादि क्लेशजन्य पीड़ा से रक्षक हैं जो आप (अविद्यायाः) अविद्या रूप नदी के (परंपारम्) उत्तम प्रकार पार करने वाले हैं आप के तारने में डूबने का भय नहीं है। इत्यादि प्रकार से स्तुति की (नमः परम ऋषिभ्यः २) इस प्रकार पिप्पलाद से सब शिष्यों ने वार २ नमस्कार किया। द्विवचन प्रश्न समाप्ति के अर्थ है॥

भा०—जो अपना उपकार करे उस का प्रत्युपकार करना चाहिये यही कृतज्ञता है पिप्पलाद ने सुकेशादि ऋषियों का सब दुःखों से निवृत्तिरूप बड़ा उपकार किया उस का अन्य प्रत्युपकार न देखते हुए कृतज्ञता दिखाते हैं। इसी प्रकार गुरु से विद्या पा कर सब को कृतज्ञता और प्रत्युपकार करना चाहिये॥ ८॥

इति षष्ठः प्रश्नद्वयमुपनिषच्च समाप्तिमगमत्॥

अस्यां प्रश्नोपनिषदि प्रत्यगात्मभूतप्राणादि सूक्ष्मवस्तुषु क्रमशो ज्ञानवृद्धयेऽध्यात्मविद्योक्ता। तत्र षट्सु प्रश्नेष्वादिमे जगतः कारणविज्ञानाय प्रश्नो नतु कार्यविज्ञाने प्राधान्यमपितु कारणस्य ब्रह्मणो विज्ञाने कार्यमुपयुक्तं भवतीति कार्यस्य व्याख्यानं प्रारब्धम्। सत्स्वेव साधनेषु साध्यस्य सिद्धिः सुलभेति न तिरोहितम्। नेत्रमन्तरेण रूपं किमस्तीति ज्ञातुं प्रवृत्ता न ज्ञातुमर्हन्ति। तस्मात्साध्यसिद्धेः पूर्वमेव साधनमपेक्ष्यते सत्सु नेत्रादिसम्यक्साधनेषु रूपादिज्ञानमनायासेनैव भवितुमर्हति। एवं ब्रह्मज्ञानस्य साधनमन्तःकरणस्य सम्यक् शुद्धिः। अन्तःकरणशुद्धिसाधनान्यप्यत्रोच्यन्ते तेषु सत्सु

सति नेत्रे रूपमिव स्वयमेव ब्रह्म ज्ञायते । अतो ये साधनसञ्चयोपायमकृत्वा वादेन पुस्तकादिदर्शनमात्रेण वा ब्रह्मज्ञानाय धावन्ति तेषां कर्म भस्मनि हुतवन्निरर्थकमिति विदुषामनुभवः । सिद्धसाधनाएव सुकेशादयः पिप्पलादकृतालपोपदेशेनैव ज्ञानसम्पन्ना बभूवुः । एवमर्थमस्यामुपनिषदि साधनानि वर्णितानि ॥

भा०-इस प्रश्नोपनिषद् में प्रत्यगात्म रूप प्राणादि सूक्ष्म वस्तुओं में ज्ञान बढ़ाने के लिये अध्यात्म विद्या कही है। उन छः प्रश्नों में से पहिले प्रश्न में जगत् का कारण जानने के लिये प्रश्न किया गया है किन्तु कार्य के जानने में प्रश्न का आशय नहीं। अर्थात् कारण रूप ब्रह्म के जानने में कार्य का ज्ञान उपयोगी होता है इस लिये कार्य पदार्थों के व्याख्यान का प्रारम्भ किया है। साधनों के होने पर साध्य की सिद्धि सुगम होती है यह प्रकट है किया नहीं क्योंकि नेत्र के विना रूप क्या है ऐसी बुद्धि से जानने को प्रवृत्त हुए मनुष्य रूप को नहीं जान सकते। इस कारण साध्य की सिद्धि अर्थात् रूप दीख पड़ने से पहिले नेत्रादि साधन की अपेक्षा होती है। जब नेत्रादि साधन ठीक २ होते तब रूपादि ज्ञान सहज स्वभाव से होता ही है। इसी प्रकार ब्रह्म ज्ञान का साधन अन्तः करण की ठीक २ शुद्धि होना है और अन्तःकरण की शुद्धि के साधन भी यहां उपनिषदों में कहे हैं। उन साधनों के इकट्ठे होने से नेत्र होने पर रूप के तुल्य स्वयमेव ब्रह्मज्ञान हो जाता है। इस से जो लोग साधनों के संचय का उपाय न कर के वाद विवाद वा पुस्तकादि के देखने मात्र से ब्रह्मज्ञान के लिये दौड़ते हैं उन का कर्म राख में होम किये के तुल्य निरर्थक होता ऐसा विद्वानों का सिद्धान्त है। सुकेशादि ऋषि जनों के आचरण वा साधन प्रथम ही से अच्छे थे तभी पिप्पलाद कृत थोड़े से उपदेश से ही वे ब्रह्मज्ञानयुक्त होगये। इस प्रकार इस उपनिषद् में साधनों का वर्णन किया गया है॥ इति

अथाथर्ववेदीयमुण्डकोपनिषत्प्रस्तावः

यथा मूलवेदादितरास्तलवकाराद्याः सर्वा उपनिषदः शिष्यप्रशिष्यपरम्परयातिपुरातनकालात्पठनपाठनव्यापारान्तर्गताः प्रवर्त्तन्ते। यथा च कठोपनिषदि यमनचिकेतसोः संवादो मूलम्। स च केन चिच्छिष्येण याथातथ्येन श्रुतोऽन्यस्मै स्वशिष्यायोपदिष्टस्तेन चान्यस्मै तेनाप्यन्यस्मादित्येवं बहुकालात्प्रवृत्तः केन चिच्छिष्येण पुस्तकाकारे संयोजितस्तेनैवोक्तम्—उशन्हवै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ तस्य ह नचिकेता नाम पुत्रआस। नचेदं वचो यमनचिकेतसोरन्यतरस्य भवितुमर्हति। किन्तु ताभ्यामितरस्य तृतीयस्येदं कथनम्। तथैवास्यामपि बोध्यम्। कल्पारम्भे समुद्भूतेन ब्रह्मणा वेदपारगत्वात् सर्वविद्यासागरेणेयं वेदान्तविद्या मुण्डकोपनिषत्प्रतिपादिता पूर्वमथर्वणे स्वशिष्यायोपदिष्टा तेन चान्यस्मा अन्येन चान्यस्मै। एवं शिष्यप्रशिष्यपरम्परया प्रवृत्ता। अनन्तरं शौनकेनर्षिणाऽङ्गिरस्तो यथा प्राप्ता साऽन्यशिष्येण श्रुता पुस्तकाकारे संयोजिता च। तदुपक्रान्तमेवादौ मन्त्रत्रयमस्ति। नाम च तस्य नास्ति। नह्याधुनिकाइव पूर्वजा अपि रजोगुणग्रस्ताः स्वनाम्नः प्रचाराय प्रतिष्ठायै वा प्रयतितवन्तइति तेतु रजोगुणात्प्रतिष्ठातो वा विषादिव बिभ्यतिस्म। तथा चोक्तं धर्मशास्त्रे-सम्मानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव। अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा। इत्यादिना प्रतीयते—पण्डिताः समदर्शिनो मानापमानादीनाम्। तस्मिन् काले

सत्यपराः सत्यनिष्ठाः सत्यस्यैव प्रवर्त्तका विद्वांस आसन् । नासीत्तदानीमयं व्यापरो यन्निर्नामकान् जालयन्थान् वेदशाह्यान्निर्माय जगति कश्चिच्चालयेदिति यदर्थं पुस्तकेषु नामरक्षणावश्यकता स्यात् । अतोऽत्र पुस्तकनिर्मातुर्नाम नास्ति तेन निर्माचाऽन्येषां स्वतः पूर्वजानां नामानि तु विद्याया गौरवदर्शनाय रक्षितानि । स कालइदानीँ नास्ति यन्नामरक्षणमन्तरेण व्यवहारः सिध्येत् । यदि कश्चिच्छ्रेष्ठो विद्वान् स्वं नाम पुस्तके न रक्षयेन्मूढश्च कश्चिन्निर्नामकं पुस्तकमालोक्य स्वनामाङ्कितं कुर्यात्तदा नहि कश्चिन्नाम दृष्ट्वा श्रद्दधीत द्रष्टुं च नोत्सुकः स्यादित्यादीनि प्रयोजनानि प्रतिपक्षदूषणानि चोरसि कृत्य नाम रक्षणीयमिति । अत्र चोक्तप्रकारेण शौनकः प्रष्टा श्रोता च । अङ्गिरा वक्ताऽस्ति । अत्र त्रीणि मुण्डकानि षट्खण्डाः सन्ति विशेषस्तत्रतत्र वक्ष्यते ॥

भाषार्थः—अब अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद् का प्रारम्भ किया जाता है । जैसे मूल वेद से भिन्न तलवकारादि सब उपनिषद् शिष्य के शिष्य आदि परम्परा से बहुत प्राचीनकाल से पठन पाठन व्यापार में प्रवृत्त चली आती हैं जैसे कठोपनिषद् में यमाचार्य और नचिकेता ऋषिपुत्र का संवाद मूल है वह संवाद किसी अन्य शिष्य ने यथावत् सुना और अन्य शिष्य को उपदेश किया उस ने और को और ने और को इस प्रकार बहुत काल तक उस के पठन पाठन की प्रवृत्ति चली आई पीछे किसी शिष्य ऋषि ने पुस्तकाकार बना दिया उसी ने यह कहा (उशन्हवै०) कि तपस्वी तेजस्वी वाजश्रवस ऋषि ने सर्ववेदस यज्ञ किया उन का पुत्र नचिकेता नामी था । यह वचन यमाचार्य वा नचिकेता में से किसी का

नहीं हो सकता किन्तु उन दोनों से भिन्न तीसरे का है। वैसे ही इस मुण्डकोपनिषद् में भी जानना चाहिये इस वर्त्तमान कल्प के प्रारम्भ में ईश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न हुए वेद के पारगन्ता होने से सब विद्याओं के समुद्र ब्रह्मा जी ने यह मुण्डकोपनिषद् रूप वेदान्त विद्या अपने मुख्य शिष्य अथर्वा ऋषि के लिये पहिले उपदेश की उस ने अन्य को और ने और को इस प्रकार शिष्य के शिष्य आदि की परम्परा से प्रवृत्त हुई। तिस पीछे शौनक ऋषि ने अङ्गिरा ऋषि से जैसे प्राप्त की उसी प्रकार अन्य शिष्य ने शौनक से सुनी और पुस्तकाकार बना दी। उसी शौनक अङ्गिरा से भिन्न तृतीय ऋषि की ओर से आरम्भ के तीन मन्त्र हैं। उस का नाम यहां नहीं लिखा गया। इस का कारण यह है कि अन्य ऋषियों का नाम तो उस ने लिखा अन्य की प्रशंसा में अच्छे पुरुषों को सङ्कोच नहीं होता किन्तु आनन्द वा उत्साह होता है परन्तु अपनी प्रशंसा स्वयं करने में सज्जन महात्माओं को अवश्य सङ्कोच होता है। वे लोग सत्त्वगुणी थे किन्तु आधुनिक कामी क्रोधी लोगों के तुल्य रजोगुण की रस्सी में वे नहीं फंसे थे इसी कारण वे अपने नाम और प्रतिष्ठा को बढ़ाने के उपाय में नहीं लगे रहते थे किन्तु वे लोग रजोगुण के विचार और प्रतिष्ठा से विष के तुल्य डरते थे जैसा कि मनुस्मृति धर्मशास्त्र में कहा है कि:—

(सम्मानाद्ब्रा०)—स्वधर्मनिष्ठ वेदज्ञानी ब्राह्मण को चाहिये कि विष के तुल्य सम्मान से डरता रहे और अमृत के तुल्य अपमान की काङ्क्षा रक्खे इस का प्रयोजन यह है कि जो अपमान से बचना और सम्मान चाहता है वह धर्म अधर्म का विचार वा सत्य का वर्त्ताव कदापि नहीं कर सकता। इस से प्रतीत होता है कि पण्डित वे ही हैं जो मान अपमान में समदर्शी हों। उस समय में सत्यपरायण सत्यनिष्ठ और सत्य की प्रवृत्ति करने वाले ही विद्वान् लोग होते थे। यह व्यवहार नहीं था कि विना नाम के वेद विरुद्ध जाल ग्रन्थ बनाकर कोई चला देवे जिस के

लिये पुस्तकों में नाम रखने की आवश्यकता होती। इस लिये यहां पुस्तक बनाने वाले का नाम नहीं रक्खागया पर पुस्तक कर्त्ता ऋषि ने अपने से पूर्वज गुरु आदि के नाम विद्या का गौरव दिखाने के लिये रक्खे हैं। वैसा समय अब नहीं है जो नाम रक्खे विना व्यवहार सिद्ध होयहि कोई श्रेष्ठ विद्वान् अपना नाम पुस्तक में न रक्खे और कोई मूर्ख उस विना नाम के पुस्तक में अपना नाम रखदे तो मूर्ख के नाम से कोई भी श्रद्धा न करे, और न देखने को उद्यत हो इत्यादि प्रयोजन और विरुद्ध होने में ये ही दोष जानकर अब पुस्तकों में नाम अवश्य रखना चाहिये। इस मुण्डकोपनिषद् में उक्त प्रकार से शौनक पूछने वाले और शौता हैं तथा अङ्गिरा वक्ता हैं। इस में तीन मुण्डक बड़े भाग हैं। और छः खण्ड हैं विशेष व्याख्या वहां २ की जायगी ॥

इति प्रस्तावः ॥

ह० भीमसेन शर्मणः

अथ मुण्डकोपनिषद्भाष्यारम्भः ॥

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता। स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

अ०—कल्पारम्भे (विश्वस्य) सर्वस्य वर्णाश्रमसम्बन्धिधर्मस्य (कर्त्ता) प्रवर्त्तकः सम्पादकः (भुवनस्य, गोप्ता) उत्पन्नस्य सर्वसाधारणाच्चप्राणिमात्रस्य कल्पान्तरीयशुद्धसंस्कारैरद्भूतविद्याषड्विधलेनान्धं कूपादिवरक्षकः (देवानाम्) वेदविदां मध्ये सर्ववेदवित् (प्रथमः) आदिमो मुख्यो वा (ब्रह्मा) धर्मज्ञानब्रह्मवर्चसतपस्तेजःपरवैराग्यैश्वर्यादिभिः प्रवृद्धो महान् ब्रह्मा—इति नाम्ना प्रसिद्धः पुरुषः (सम्बभूव) परमात्मनः स्वाभाविक्या प्रेरणया मैथुनसंयोगमन्तरेणोत्पन्न आसीत् (सः) ब्रह्मा (सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्) सर्वा विद्याः प्रतितिष्ठन्ति यत्र तां सर्वासां पराकाष्ठाम्। अनया ब्रह्मज्ञाने सति न किमपिज्ञातुमवशिष्यते ताम् (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मज्ञानसाधनोपायरूपां वेदान्तविद्याम् (ज्येष्ठपुत्राय) सर्वपुत्रेषु श्रेष्ठाय शुचये योग्यायाप्रमत्तये शिष्याय (प्राह) ॥

भा०—कल्पारम्भेऽथर्ववेदान्मूलादाशयमाकृष्य मुण्डकनाम्ना प्रसिद्धा ब्रह्मविद्या ब्रह्मणा योग्याय स्वशिष्याय

पूर्वमुपदिष्टा पश्चात् शिष्यप्रशिष्यपरम्परया प्रचारं प्राप्ता। कल्पारम्भाद्विद्याया मूलदर्शनेनास्याः प्राशस्त्यं सूच्यते। विश्वस्येति विशेषणम्। तस्यजगदिति विशेष्यं वक्तुमशक्यम्। कर्त्तुरपि कार्यान्तर्गतत्वात्। वेदेष्वपि परब्रह्मणएव स्रष्टृत्वप्रतिपादनाच्च यथार्थवेदे—उच्चिक्रष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवा दिविश्रितः। इत्यादिबहुशः प्रतिपादितं येन स्पष्टं प्रतीयते यस्मादिदं सर्वं जगज्जायते स रचनात उच्चिकृष्यतेऽतएव तस्योच्चिक्रष्टमिति नामास्ति ब्रह्मा च स्वयं रचनायामागतोऽस्ति। तस्मात्तस्य सृष्टिकर्त्तृत्वं नोपपद्यते। यदि कुत्राप्येतदुपपन्नं भवेत्तर्हि तत्र परब्रह्मण एव ब्रह्मा नामावगन्तव्यं धीमद्भिः ॥ १ ॥

भाषार्थः—इस ब्राह्म कल्प के आरम्भ में (विश्वस्य) सब वर्णाश्रम सम्बन्धी धर्म के (कर्त्ता) प्रवर्त्तक वा प्रचारक (भुवनस्य) उत्पन्न हुए सर्वसाधारण प्राणीमात्र के कल्पान्तर सम्बन्धी शुद्ध संस्कारों से प्रकट हुई विद्या और बुद्धि के प्रताप से कूप से अन्धे को तुल्य रक्षा करने वाले (देवानाम्) वेदवेत्ता अग्नि आदि ऋषियों के बीच (प्रथमः) मुख्य सर्ववेद पारगन्ता (ब्रह्मा) धर्म का पूर्णज्ञान वेद और तप सम्बन्धी तेज और पर वैराग्य आदि ऐश्वर्य सम्पत्ति से बढ़े हुए ब्रह्मा नामी प्रसिद्ध पुरुष (सम्भूव) परमात्मा की स्वाभाविक प्रेरणा से स्त्री पुरुष के मैथुन संयोग के विना ही उत्पन्न हुए (सः) वे ब्रह्मा जी (सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्) सब विद्याओं की जिस में स्थिति हो अर्थात् इस वेदान्तविद्या में लिखे साधनों का यथावत् अनुष्ठान होने से ब्रह्मज्ञान होने पर जानना कुछ बाकी नहीं रह जाता उस (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मज्ञान के साधन उपाय रूप वेदान्तविद्या का (ज्येष्ठपुत्राय) सबपुत्रों में श्रेष्ठ शुद्धान्तःकरण योग्य अप्रमादी शिष्य को (प्राह) उपदेश किया ॥

भा०—इस वर्त्तमान ब्राह्मकल्प के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने मूल अथर्ववेद का आश्रय लेकर मुण्डक नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मविद्या का अपने मुख्य शिष्य अथर्वा ऋषि को पहिले उपदेश किया पीछे शिष्य प्रशिष्य कीपरम्परा से इस ब्रह्मविद्या का प्रचार आज तक चला आता है कल्प के प्रारम्भ से इस विद्या का मूल दिखाने से इस का उत्तम होना प्रकट किया है। इस मंत्र में विश्व शब्द विशेषण वाचक है उस का विशेष्य पद जगत् इस लिये नहीं माना जा सकता कि ब्रह्मा जी भी कार्य जगत् के अन्तर्गत ही थे घटादि कार्य से कुलालादि कर्त्ता सदा भिन्न रहता है और ब्रह्मा जी को सृष्टि कर्त्ता मानने में वेद से भी विरोध आता है जैसे अथर्ववेद में लिखा है कि (उच्छिष्टाज्जज्ञिरे०) जो रचना से सदा पृथक् रहता है रचना में कभी नहीं आता उसी परमेश्वर उच्छिष्ट नामी से सूर्यादि सब जगत् उत्पन्न हुआ है इत्यादि अनेक प्रकार के कथन से स्पष्ट निश्चय होजाता है कि जिस से यह सब जगत् उत्पन्न होता है वह रचना में कदापि नहीं आता इसी से उस का उच्छिष्ट नाम हुआ है। ब्रह्मा जी स्वयं रचना में शरीरधारी हुए इस लिये वे सृष्टिकर्त्ता नहीं हो सकते। यदि कहीं ऐसा हो प्रतीत हो कि ब्रह्मा ही सृष्टि कर्त्ता हैं तो वहां परब्रह्म का ही ब्रह्मा नाम बुद्धिमानों को जानना चाहिये ॥ १ ॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्। स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥

अ०—(ब्रह्मा) चतुर्वेदवक्ता (याम्, ब्रह्मविद्याम्) (अथर्वणे) उक्तशिष्याय [अथर्वशब्दः प्रकारद्वयेन व्युत्पा-

दयितव्यः सचैकार्थएव । एकोऽदन्तोऽपरो नान्तः । थर्व-तिश्चरतिकर्मा (चरसंशये) तत्प्रतिषेधः संशयप्रतिषिद्धाऽथ-वेाऽथर्वा वा] (प्रवदेत) प्रोक्तवान् भूते लिङ् (ताम्,अथ-र्वा) (अङ्गिरे) अङ्गिर्नामकाय स्वशिष्याय (पुरा,उवाच) अन्यशिष्येभ्यः पूर्वमधिकारिणं मत्वोपदिष्टवान् (सः) अङ्गीः (भारद्वाजाय) भारद्वाजगोत्रिणे (सत्यवाहाय) एतन्ना-म्ने शिष्याय (प्राह) उक्तवान् (भारद्वाजः) (परावराम्) परस्मादवरेण पश्चादुद्भूतेन प्राप्तां विद्याम् (अङ्गिरसे) एतन्नाम्ने ऋषये प्राह । एवं परम्परया प्रचरिता ॥

भा०-सर्वविद्यानां वेदमूलकत्वात्सर्वविद्यामूलं पर-मात्मा तस्मादेव सर्वा विद्याः सर्वं च जगदुत्पन्नम् । अनन्तरं गुरुशिष्यपरम्परया कल्पावधि न्यूनाधिकभा-वेन सर्वा विद्याः प्रवर्त्तन्ते ॥ २ ॥

भाषार्थः—(ब्रह्मा) चारो वेद के वक्ता ब्रह्मा जी ने (याम्,ब्रह्म-विद्याम्) जिस ब्रह्मविद्या का (अथर्वणे) उक्त शिष्य अथर्वा ऋषि के लिये (प्रवदेत) उपदेश किया (ताम्) उसी का (अथर्वा) अथर्वा ने (अङ्गिरे) अङ्गी नामक अपने शिष्य को (पुरा,उवाच) अन्य शिष्यों से पहिले उस को अधिकारी मान के उपदेश किया (सः) उस अङ्गी ने (भारद्वाजाय) भारद्वाजगोत्री (सत्यवाहाय) सत्यवाह नामी ऋषि को (प्राह) उपदेश किया और (परावराम्) पहिले २ पुरुषों से अगले २ को प्राप्त होती आई विद्या का (भारद्वाजः) भारद्वाज-गोत्री सत्यवाह ने (अङ्गिरसे) अङ्गिरा ऋषि को उपदेश किया। इसी प्रकार परम्परा से प्रचार होता आया ॥

भा०-सब विद्याओं का मूल वेद और वेद का भी मूल पर-मेश्वर है उसी से सब विद्या तथा सब जगत् उत्पन्न हुआ है। इस

के पीछे गुरु शिष्य की परम्परा से कुछअर न्यूनाधिक भाव से उस विद्या प्रवृत्त रहती है। प्रलयानन्तर फिर भी उसी से चलती है उस का गुरु कोई नहीं वह गुरुओं का भी गुरु है ॥ २ ॥

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥ ३ ॥

प०—अन्यः कश्चिच्छिष्यः प्राह (ह वै) पुरातनकाले (महाशालः) महत्यः शाला गृहाणि प्राप्तादा यस्य स सर्वगृहाश्रमैश्वर्यसम्पन्नः (शौनकः) शुनकस्यापत्यम् (अङ्गिरसम्) सत्यवाक्शिष्यं स्वस्याचार्यम् (विधिवत्) शास्त्रोक्तप्रकारेण (उपसन्नः) सान्निध्यं प्राप्तः (पप्रच्छ) पृष्टवान्। हे (भगवः) भगवन् विद्यैश्वर्यसम्पन्न तपोधन (कस्मिन्) (विज्ञाते) (इदम्, सर्वम्, विज्ञातम्) भवति। अर्थात् तत् किमस्ति यस्य विज्ञानेन पुनरन्यस्य ज्ञातुमपेक्षा निवर्त्तते॥

भावार्थः—अस्यामुपनिषदि शौनकविक्षत एकएवायं प्रश्नोऽस्यैव सर्वं व्याख्यानमुत्तररूपमेव विज्ञेयम्। तद च विज्ञानं विज्ञेयं सर्वंच किमस्तीति सर्वं पृष्टमेव विज्ञेयम्। साधनमन्तरेण विज्ञानमप्यसम्भवमिति साधनान्यपि वक्तव्यानि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—अन्य कोई शिष्य कहता है-(ह,वै) पहिले समय में (महाशालः) बड़े२ ऊंचे अति सुन्दर घरों वाले गृहाश्रम के सम्पूर्ण

ऐश्वर्य से युक्त (शौनकः) शुनक के पुत्र शौनक ऋषि ने सत्यवाह के शिष्य और अपने गुरु (अङ्गिरसम्) अङ्गिराऋषि के समीप (विधिवत्) शास्त्र की आज्ञा के अनुसार (उपसन्नः) जाकर (पप्रच्छ) पूछा कि हे (भगवः) विद्यारूप ऐश्वर्य से युक्त तप ही जिन का धन है (कस्मिन्, विज्ञाते) किस के जान लेने से (इदम्,सर्वम्) यह सब (विज्ञातम्) (भवति) जान लिया जाता है अर्थात् वह कौन वस्तु है ? कि जिस के जान लेने से फिर अन्य के जानने की अपेक्षा नहीं रहती ॥

भा०—इस उपनिषद् में शौनकऋषिकृत एक यही प्रश्न है इसी का उत्तर रूप व्याख्यान इस में है। उस में ज्ञान, जानने योग्य वस्तु और सब क्या है ? इत्यादि सभी का पूछना आजाता है और साधन के विना ज्ञान होना भी असम्भव है इसलिये साधन भी अवश्य कहने चाहिये ॥ २ ॥

तस्मै सहोवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥ ४ ॥

अन्वयः—इदानीं साधनमुपक्रमते—(सः) अङ्गिराः (तस्मै) शौनकाय (ह उवाच) तात ! त्वया (द्वे,विद्ये, वेदितव्ये) (इति) इत्येवं प्रकारेण (ह,स्म) अतीतवृत्त स्मरणार्थौ निपातौ (यत्) विद्याद्वयम् (ब्रह्मविदः) वेदार्थज्ञा वेदपारगाः (वदन्ति) तयोर्नाम्नी (परा, च, एव अपरा,च) पराविद्या परमार्थसाधने मुख्यतयोपयुक्ता,अपरा संसारान्तर्गतधर्माधर्मादिविवेचने मुख्यतयोपयुक्ता ॥

भा०—जगति यावत्पदार्थजाते भेदद्वयं प्रत्येतव्यम्। परमपरं च तथैव ब्रह्मज्ञानसाधनेषु भेदद्वयमस्ति। तत्र

परम्परयाऽपरापि ब्रह्मज्ञानस्य साधनम्। साक्षात्तु परैव। पराविद्यायाश्च साक्षात्साधनमपरा विद्यास्ति । स्वस्वविषये द्वयोरपि प्राधान्यम् । नात्र परापरशब्दौ प्रधानाप्रधानवाचकौ स्तः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—अब ब्रह्मविद्या होने के साधनों के व्याख्यान का प्रारम्भ किया जाता है (सः) वे अङ्गिरा ऋषि (तस्मै) उन शौनक अपने शिष्य से (ह,उवाच) प्रकट बोले कि हे शिष्य तुम को (हे,विद्ये,वेदितव्ये) दो विद्या जाननी चाहिये (इति) ऐसा विचार कर (ह,स्म) बहुत पुरातन काल से (यत्) जिन दो विद्या ओं को (ब्रह्मविदः) वेद का आशय यथावत् जानने वाले वेद के पारगन्ता विद्वान् लोग (वदन्ति) कहते आये हैं उन दोनों विद्या के (परा,च,एव,अपरा;च) परा और अपरा नाम हैं परमार्थ के सिद्ध होने में मुख्य उपकार जिस से हो वह परा और संसाराऽन्तर्गत धर्म अधर्म के विवेचन में मुख्य उपयोगिनी अपरा विद्या है ॥

भा०—जगत् में जितने पदार्थ हैं उन सब में दो भेद निश्चय करने चाहिये। उस में परम्परा से अपरा विद्या भी ब्रह्मज्ञान का साधन है परन्तु साक्षात्साधन परा ही है और परा विद्या का साक्षात्साधन अपरा विद्या है अपने २ विषय में दोनों की प्रधानता है किन्तु यहां पर अपर अपर शब्द किसी की गौणता वा किसी की मुख्यता दिखाने के लिये नहीं हैं ॥ ४ ॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

अ०—(तत्र) तयोः परापरविद्ययोर्मध्ये (ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदः) इमे चत्वारो वेदाः (शिक्षा, कल्पः, व्याकरणम्, निरुक्तम्, छन्दः, ज्योतिषम्) इमानि षडङ्गानि तत्र शिक्षाव्याकरणे पाणिनीये कल्पः पैङ्गी-त्यादिविशेषणविशिष्टः । निरुक्तं यास्कमुनिप्रणीतं छन्दः पिङ्गलाचार्यकृतम् । ज्योतिषं सूर्यसिद्धान्तादिनाम्ना प्रसिद्धम् । उपलक्षणमेतदन्येषामार्षग्रन्थानाम् । तेन सर्वाणि पुस्तकान्यपरा विद्यास्थानि (अथ) (यया) विद्यया (तत्, अक्षरम्) अविनाशि वरोक्तं ब्रह्म (अधिगम्यते) प्राप्यते ज्ञायते च सा (परा) परमार्थसाधने मुख्यतयो-पयुक्ता शमदमतितिक्षोपरतितपश्चरणयोगाङ्गानुष्ठानादि-रूपा परा विद्यास्ति ॥

भा०—सर्वविद्यामूलं वेदस्तस्मादेव व्याकरणनिरु-क्तादिकं निस्सृतम् । सर्वविद्याविषयत्वाद्वेदस्य सर्वोपरि प्राधान्यं स्वस्वविषये चान्येषां व्याकरणादीनाम् । एव-मुपनिषदां ब्रह्मज्ञानसाधनेषु प्राधान्यमायाति तानि सा-धनानि मूलभूतानि मूलवेदादुपादायोपनिषत्सु विस्तरेण वर्णितानि । नह्येतेन वेदादधिकं प्राधान्यमुपनिषदासु-पपादनीयं ज्ञातव्यं वा वेदः पितृस्थान्यन्यानि पुस्तका-नि च पुत्रस्थानीनि पुत्राच्च पितुः प्राधान्यं स्फुटमेव ॥५॥

भाषार्थ-(तत्र) उन दोनों परा अपरा विद्या के बीच (ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदः) ऋग् यजुः साम अथर्व ये चार वेद (शिक्षा,कल्पः,) (व्याकरणम्,निरुक्तम्,छन्दः,ज्योतिषम्) शिक्षा और व्याकरण अष्टाध्यायी ये पाणिनि ऋषि कृत। कल्प पिङ्ग ऋषि

क्षन निरुक्त याज्ञ ऋषि का बनाया,छन्दः पिङ्गलाचार्य का बनाया, ज्योतिष सूर्यसिद्धान्तादि नाम से प्रसिद्ध ये वेद के छः अङ्ग इत्यादि सब अन्य भी ऋषि प्रणीत पुस्तक अपरा विद्या में हैं (अथ) और (यया) जिस विद्या से (तत्,अक्षरम्) वह परोक्ष अविनाशी ब्रह्म (अधिगम्यते) प्राप्त होना वा जाना जाता है वह (परा) परमात्मा की सिद्धि में मुख्य कर उपयोगिनी भ्रम भ्रान्ति चंचलता छूटना दम इन्द्रियों का वश में होना सहन शीलता वैराग्य, तप का सेवन और योग के यम नियमादि अङ्गों का अनुष्ठान रूप परा विद्या है ॥

भा०—सब विद्याओं का मूल वेद है उसी से व्याकरण निरुक्तादि भी निकले हैं वेद में सब विद्याओं का विषय होने से वेद सब से मुख्य वा प्रधान है और व्याकरणादि अपने २ एक २ विषय में प्रधान हैं। उपनिषदों में ज्ञान के जो २ साधन कहे हैं उन का भी सूक्ष्मरूप मूल वेद से लेकर विस्तार से वर्णन किया गया है। इस से उपनिषदों की वेद से अधिक उत्तमता सिद्ध नहीं करनी चाहिये क्योंकि वेदपितृस्थानी तथा अन्य पुस्तक सब पुत्रस्थानी हैं पुत्र से अधिक प्रधानता जैसे पिता की मानी जाती है वैसे सब ग्रन्थों की उत्पत्ति के हेतु पितृस्थानी वेद की सब उपनिषदादि से अधिक प्रधानता माननी चाहिये ॥ ५ ॥

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमच-
क्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं
सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं
परिपश्यन्ति धीराः ॥ ६ ॥

अ०—पराविद्याधिगम्यमक्षरमविनश्वरं ब्रह्म कीदृगित्युच्यते—(यत्तत्) यत्तच्छब्दाभ्यामेव वक्तुमर्हम् । नहि केनचिदस्तामलकवद्द्रष्टुं योग्यम् (अदृश्यम्)

अतीन्द्रियं ज्ञानेन्द्रियैरग्राह्यम् (अग्राह्य) कर्मेन्द्रियैः प्राप्तुमशक्यम् (अगोत्रम्) पित्रादिवंशविहीनम् (अवर्णम्) श्वेतपीतकृष्णादिवर्णरहितम् (अचक्षुःश्रोत्रम्) नास्ति चक्षुः श्रोत्रं च यस्य न चक्षुषा पश्यति न च श्रोत्रेण शृणोति यद्येवं स्यात्तर्हि तयोरभावेऽन्धो बधिरश्चापि भवेत् (तत्,अपाणिपादम्) उपलक्षणमेतदपि तेन कर्मेन्द्रियविवर्जितमिति निष्पन्नम् (नित्यम्) (विभुम्) विविधप्रकारेषु वस्तुषु भवति सत्तारूपेण तिष्ठति सर्वान् स्थापयति च (सर्वगतम्) परमाणुजीवात्मस्वपि व्याप्तम् (सुसूक्ष्मम्) अतिसूक्ष्मं नास्ति किमपि ततः सूक्ष्मम् । अतएव (तत्,अव्ययम्) नास्ति व्ययो ह्रासो यस्य तत् (यत्) (भूतयोनिम्) भूतानामुत्पन्नानां पदार्थमात्राणां योनिं कारणं तस्मादेव सर्वमुत्पद्यते । यथा पितरावन्तरेणापत्यं न जायते तथैव सर्वस्य सएव माता पिता चास्ति । एवंभूतं परं ब्रह्म (धीराः) ध्यानशीला विद्वांसः (परिपश्यन्ति) परितः प्रत्यगात्मदृष्ट्या ध्यानेनात्ममनःसंयोगमात्रेण साक्षात्कुर्वन्ति ॥

भा०—अपराविद्यास्थेषु सर्ववेदादिपुस्तकेषु कल्याणमार्गप्रधानस्य ब्रह्मज्ञानस्य साधनानि साङ्गोपाङ्गानि वर्णितानि तेषां शास्त्राणां ज्ञानं ब्रह्मचर्याद्याश्रमनियमानुष्ठानपुरस्सरं सम्पादयितुं सुलभम् । तत्र च श्रोत्रेण विद्यानां श्रवणं नेत्रेण पुस्तकादिषु दर्शनं वाचा कथनं च कर्त्तव्यम् । एवमेतस्यामपराविद्यायां निष्पन्नायां तत्साहाय्येन धारणाध्यानसमाधिरूपां पराविद्यां विद्वानन्त-

थाश्रमे सेवेत । इत्येवं प्रकारेणादृश्यादिरूपं ब्रह्म साक्षा-ज्ज्ञातुं शक्यम् ॥६॥

भाषार्थः—पराविद्या से प्राप्त होने योग्य अविनाशी ब्रह्म कैसा है सो कहते हैं (यत्, तत्) जो वह इत्यादि प्रकार से ही जिस का वर्णन कर सकते हैं कोई हाथ में आमले के तुल्य प्रत्यक्ष ब्रह्म को नहीं देख सकता (अदृश्यम्) जो ज्ञानेन्द्रियों से नहीं जाना जाता (अग्राह्यम्) हाथ पांव आदि से पकड़ने में नहीं आता (अगोचम्) जिस का गोत्र अर्थात् कुल कोई नहीं (अवर्णम्) जिस में काला पीला श्वेत आदि रंग नहीं (अचक्षुःश्रोत्रम्) आंख कान जिस के नहीं जो न आंख से देखता न कान से सुनता है। यदि आंख आदि से देखता हो तो आंख कान के न रहने पर अन्धा और बहिरा भी होना चाहिये (तत्, अपाणिपादम्) वह हाथ पांव आदि कर्मेन्द्रियों से रहित है (नित्यम्) नित्य (विभुम्) सब प्रकार के पदार्थों में सत्तारूप से स्थित और सब को अपनी सत्ता से स्थित रखने वाला (सर्वगतम्) परमाणु और जीवात्मा में भी व्याप्त इसी से (सुसूक्ष्मम्) अति सूक्ष्म जिस से परे कोई सूक्ष्म नहीं (तत्, अव्ययम्) वह अव्यय है जिस में कभी कुछ घटता नहीं (भूतयोनिम्) उत्पन्न हुए सब वस्तुओं का कारण है उसी से सब उत्पन्न होता है जैसे पिता के विना पुत्र नहीं होता वैसे वही सब के माता पिता का भी माता पिता है इस उक्त प्रकार के परमात्मा का (धीराः) ध्यानशील विद्वान् लोग (परिपश्यन्ति) भीतरी विचार वा ध्यान से आत्मा मन के संयोग से ही साक्षात् ज्ञान करते हैं ॥

भा०—अपरा विद्या के अन्तर्गत सब वेदादि के पुस्तकों में जो २ कल्याण के मार्ग कहे हैं उन में मुख्य ब्रह्मज्ञान के साधन भी साङ्गोपाङ्ग वर्णन किये गये हैं उन शास्त्रों का ज्ञान ब्रह्मचर्यादि आश्रम के नियमों का अनुष्ठान पूर्वक सिद्ध होना सुलभ है। वहां कान से शास्त्रों का सुनना आंख से पुस्तकादि देखना

और वाणी से कहना वा बोलना आदि प्रायः बाह्यक्रिया होने से अपरा विद्या है इस प्रकार अपरा विद्या की सिद्धि अर्थात् शास्त्रज्ञान होने पर उसी की सहायता से धारणा ध्यान और समाधि रूप परा विद्या का विद्वान् पुरुष चौथे सन्यासाश्रम में मुख्य कर सेवन करे इस प्रकार परा विद्या से अदृश्यादि रूप परमेश्वर का साक्षात् ज्ञान हो सकता है ॥ ६ ॥

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति । यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥ ७ ॥

अ०—पूर्वस्मिन् मंत्रे भूतयोनिमित्युक्तम् । तस्येदं विशिष्टं व्याख्यानम् । किंभूतं जगतः कारणं ब्रह्मेत्युच्यते—(यथा) (ऊर्णनाभिः) ऊर्णा जालनिर्माणकारणं नाभौ यस्य स लूताकीटः (सृजते) जालतन्तून् स्वभावेनैव निर्मिमीते प्रसारयति (गृह्णतेच) स्वात्मनि कूर्मोऽङ्गानीव संकोचयति (यथा) (पृथिव्याम्) आधाररूपायां धरायां सत्यामेव स्वस्वबीजोपादानात् (ओषधयः) यवाद्याः (सम्भवन्ति) उत्पद्यन्ते (यथा) च (सतः) विद्यमानस्य जीवात्मनः (पुरुषात्) शरीरात्पूर्णाद्युवावस्थादेव (केशलोमानि) श्मश्रुशस्पाद्यानि सम्भवन्ति । (तथा) सत एव (अक्षरात्) अविनाशिनः परब्रह्मणः (इह) संसारे (विश्वम्) वस्तुमात्रं स्वस्वोपादानादेव (सम्भवति) उत्पद्यते ॥

मूल्यप्राप्तिस्वीकार ॥

२०७	बा० अयोध्याप्रसाद जी	डिङ्का २।)
२११	बा० बांकेलाल बद्रीदास जी	आगरा २।)
२१२	बा० कृपाराम जी	कटा २।)
५७	बा० भोलानाथ जी	सहारनपुर १॥)
२१२	बा० गुरुबक्स जी	मुलतान २।)
२०१	बा० फतेचन्द जी	लाहोर १।)
३५	पं० रमादत्त जी त्रिपाठी	नैनीताल २।)
१५५	बा० हरदेव प्रसाद जी	समस्तीपुर २।)
१६५	बा० रामप्यालाल जी	अजमेर २।)
२१५	पं० दुलीचन्द जी मिश्र	सिवनी छपरा २।)
२४	पं० नाथूराम जी	कर्णवास २)
२१७	बा० वैजनाथ जी सबजज्ज	अलीगढ़ २।)
२०४	बा० गोकुल प्रसाद जी	मरदान २।)

विज्ञापन ॥

सब ग्राहक महाशयों की सेवा में निवेदन है कि उपनिषद् भाष्य के इस १० दशवें अङ्क में प्रश्नोपनिषद् के भाष्य की समाप्ति और मुंडकोपनिषद् के भाष्य का प्रारम्भ हुआ है इसी से इस अंक में कुछ ढील भी हुई क्योंकि एक की समाप्ति और द्वितीय के प्रारम्भ में कुछ विचार की आवश्यकता पड़ती है। मुंडकोपनिषद् भी अनुमान चार अङ्कों में समाप्त होगी। आप लोग जो इन के ग्राहक हैं वे स्वयं भी कुछ परिश्रम को जानते होंगे। जैसे परिश्रम से मैं व्याख्या करता हूं वैसे ही आप देखने में परिश्रम कीजिये। यदि कुछ संदेह रहे तो शुद्ध हृदय से पूछिये रागद्वेष छोड़िये। इसी में मेरा भी परिश्रम सफल होगा। मैं ग्राहकों को सहायक समझता हूं। उन ग्राहकों को भी स्वयं स्मरण रखना चाहिये जो सहायता देने में शिथिलता करते हों।

इस प्रश्नोपनिषद् का शुद्धाशुद्ध पत्र नहीं बनाया गया। मैंने

कई फारम पढ़ कर देखे तो विशेष अशुद्धि नहीं जानपड़ीं सब पढ़ने से दो चार अशुद्धि निकल जाना सम्भव था सो इतने के लिये शुद्धि पत्र बनाने की आवश्यकता नहीं समझी। यदि कहीं अशुद्धि जानपड़े तो निश्चय कर सुधार लें वा मुझ से पूछ लें॥

पुस्तकों का सूचीपत्र॥

वाजसनेयोपनिषद् (ईश) संस्कृत भाषावृत्तिसहित ≠) तलवकारोपनिषद् (केन) संस्कृत भाषावृत्तिसहित।) कठोपनिषद् संस्कृत भाषावृत्तिसहित १) प्रश्नोपनिषद् संस्कृत भाषावृत्तिसहित ॥) डाकव्यय पृ० ४ के ≠) तीर्थविषय ≠) विवाहव्यवस्था।) हिताहितसंवाद ≠) न्यायदर्शन सूत्रसूचपाठ।) हिन्दी का प्रथम पुस्तक ≠) प्रेमप्रभाव ≠)॥ कुमारीभूषण ≠) शास्त्रार्थखुर्जा ≠) आर्यसिद्धान्त १।२ भाग २४ अङ्क स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द सहित २) आर्यसिद्धान्त प्रथम द्वितीय भाग २४ अङ्क विनाजिल्द २) इन पुस्तकों का डाकमहसूल पृथक् ग्राहक को देना होगा जो एक २ मंगावेंगे उन को आर्यसिद्धान्त उपनिषद् क्रोड़ के प्रत्येक पर)॥ डाकव्यय देना होगा जो महाशय इन में से ५) रु० नगद तक के पुस्तक लेंगे उन को २०) रु० सैकड़े के हिसाब से कमिशन के पुस्तक अधिक दिये जावेंगे अर्थात् ५) रु० में ६) रु० के पुस्तक मिलेंगे॥

नारीसुदशाप्रवर्त्तक भाग चारो १) सत्यासत्यविचार ≠) मूर्त्तितत्त्वनिरूपण ≠)

दिग्विजयार्क द्वितीयखण्ड ॥) इतिहासतिमिरनाशक तृतीयखण्ड ≠) आर्यसमाजपरिचय।) स्वधर्मरक्षा।) गोरक्षार्थदीपिका ≠) जड़तत्त्व विज्ञान १ भाग ≠) जड़तत्त्व विज्ञान २ भाग ≠) विभक्तियों का वर्णन ≠) सन्धिविषय ≠) अव्ययार्थ ≠) सर्वनाम जंची ≠) ये छः पुस्तक बा० मथुरादास जी सुपर वाइजर के बनाये हैं॥

ये सब पुस्तक बाहर के कमिशन पर विक्रयार्थ हैं प्रत्येक पर डाकव्यय)॥ है कई पुस्तक इकट्ठे लेने पर डाकव्यय कम लगेगा इन पर कमिशन न मिलेगा जिन महाशयों को लेना हो मुझ से मंगा लेवें॥ भीमसेन शर्मा—सम्पादक आर्यसिद्धान्त—प्रयाग

॥ ओ३म् ॥

॥ उपनिषद्भाष्यम् ॥

श्री परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिविरचितं

शिष्येण भीमसेन शर्म्मणा

लोकोपकाराय संस्कृतभाषयार्थ्य-

भाषया च व्याख्यानम् ॥

भाग १ ॥ मासिकंपत्रम् ॥ खण्ड १२

ता० १ नौम्बर कार्त्तिक संवत् १८४७
वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २।)
इस की रजिष्टरी कराई गई है किसी को छापने
का अधिकार नहीं है।

लोकोपकारक यन्त्रालय में मुद्रित हुआ ॥

॥ फूलाछाबाद ॥

सन् १८८१

मूल्यप्राप्तिस्वीकार ॥

२२६—श्रीमती आत्माबाई	किरांची २)
२२८—बा० शीतलराम वर्मा	सुनारी २)
१८५—पं० चन्द्रदत्त जी	लाहोर २)
२०२—बा० जंगबहादुर जी	कोठी नौरतन २)
२०७—बा० अयोध्याप्रसाद जी	डिब्रिका २)
१५२—महाराजा माधवसिंह जी	जयपुर २)
६०—पं० रामभजन शर्मा	नीमच २)
२०१—बा० फतेचन्द जी	लाहोर १)
३१—स्वामी गणेशानन्द जी	औरय्या २)
१२८—बा० सदानन्द जी	स्यालकोट २)
२३२—श्री अर्जुनसिंह जी दरोगा	घनघारीरंग २)
७—मंत्री आर्यसमाज	काशीपुर २)

उपनिषद्भाष्य के नियम ॥

१—इस में टाटिल से भिन्न डिमाई के चार फारम अर्थात् ३२ पृष्ठ व्याख्या प्रत्येक अङ्क में रहेगी ॥

२—यह उपनिषद्भाष्य का मासिक अङ्क तारीख १ दिसम्बर सन् १८८९ से प्रतिमास की पहिली तारीख को निकलता है ॥

३—इस का वार्षिक मूल्य सर्वसाधारण की सुगमता के लिये डाकव्यय सहित २) रक्खा है धर्मात्मा महाराजा वा रईस लोग कृपादृष्टि से जो कुछ अधिक देंगे वह सहायता में धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया जाया करेगा ॥

४—यह पत्र ग्रन्थकर्त्ता का स्वत्व समझा जायगा लाभ होने पर लाभ में से दशांश श्रीमद्दयानन्दविश्वविद्यालय पाठशाला प्रयाग को धर्मार्थ दिया जाया करेगा ॥

५—मूल्य सब से वर्षके प्रारम्भ में लिया जायगा जो महाशय नमूना देखने के लिये १ अङ्क मंगवावेंगे उन को ॥) भेजने से नमूने का अङ्क भेजा जायगा । उपनिषद्भाष्य सम्बन्धी चिट्ठी पत्र वा मनीआर्डर आदि भीमसेन शर्मा सम्पादक आर्यसिद्धान्त—प्रयाग के नाम भेजा करें ॥ भीमसेन शर्मा

यस्यां दशायाम्(अव्ययात्मा) अविनाशिस्वरूपः (अमृतः) नित्यमुक्तः (पुरुषः) पूर्णो व्याप्तः परमात्मास्ति तत्र (सूर्यद्वारेण) मूर्द्धगतप्राणनाड़ीद्वारा (प्रयान्ति) प्रयाणकाले निस्सरन्ति गच्छन्ति तामेव दशामाप्नुवन्ति ॥

भा०—कर्मफलभोगेषु रक्तानां दशा पूर्वमुक्ता। इदानीं कर्मफलभोगोत्कण्ठां विहाय वैदिके कर्मणि तत्पराणां दशोच्यते। ये शुद्धाः शान्ता भोगादुपरताश्च सन्तः श्रद्धया विश्वासेन चेश्वराज्ञारूपं वेदोक्तमग्निहोत्रादिकं कर्म सेवन्ते ते ज्ञानिनो मरणावसरे उपात्तं कलेवरं त्यक्त्वा मुक्ता भवन्ति ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(ये,ऽपि) जोभी (शान्ताः) संसारी सुख भोग से जिन की बुद्धि विरक्त होगई ऐसे (विद्वांसः) शास्त्रज्ञाता विद्वान् लोग (भैक्षचर्याम्) नौकरी वा व्यापार से जोविद्या छोड़ कर अज्ञानु मनुष्य से प्राण स्थिति के निर्वाहमात्र आठ ग्रास अन्न को लेकर जीवन (चरन्तः) व्यतीत करते हुए (अरण्ये) नाना प्रकार के अन्नों से रहित बनादि एकान्त देश में (तपःश्रद्धे) शीत उष्णादि द्वन्द्वों का सहना वा नियम धारण रूप तप और अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म को करते हुए (उपवसन्ति) अपने अन्तःकरण में चित्त को रोक कर बसते हैं (ते) वे (विरजाः) शुद्ध निष्पाप हुए (यत्र) जिस दशा में (अव्ययात्मा) अविनाशीरूप (अमृतः) नित्य मुक्त (पुरुषः) पूर्ण व्याप्त परमात्मा है उस दशा में (सूर्यद्वारेण) मूर्द्धा ब्रह्माण्ड में रहने वाली प्राण नाड़ी द्वारा (प्रयान्ति) मरण समय में निकलते हैं अर्थात् परमेश्वर को उसी मुक्तदशा को प्राप्त होते हैं ॥

भा०—कर्मफल भोगों में आसक्त लोगों की दशा पहिले कही अब कर्मफल के भोग की अभिलाषा को छोड़ कर वैदिक कर्म में तत्पर पुरुषों की दशा कहते हैं—जो शुद्ध शान्त और भोग से विरक्त

हो कर श्रद्धा और विश्वास से परमेश्वर की आज्ञा रूप वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म का सेवन करते हैं वे ज्ञानी लोग मरण समय में प्राप्त हुए शरीर को छोड़ कर मुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १२ ॥

प०—परीक्ष्य । लोकान् । कर्मचितान् । ब्राह्मणः । निर्वेदम् । आयात् । नास्ति । अकृतः । कृतेन । तद्विज्ञानार्थम् । सः । गुरुम् । एव । अभिगच्छेत् । समित्पाणिः । श्रोत्रियम् । ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १२ ॥

अ०—(ब्राह्मणः) ब्रह्मणो वेदस्य ज्ञाता ब्रह्मणः परमात्मनो ज्ञाने प्राप्तौ निषण्ण आसक्तो जिज्ञासुर्जनः (कर्मचितान्) कृतैः शुभाशुभकर्मभिः फलभोगोत्कण्ठया संचितान् (लोकान्) लोकितुं द्रष्टुं योग्यान् स्त्रीधनपुत्रादिपदार्थान् सुखहेतून् (परीक्ष्य) परिणामादिना दुःखहेतून् निश्चित्य (निर्वेदम्) संसारिसुखभोगादौदासीन्यम् (आयात्) प्राप्नुयात् कुतः (कृतेन) कर्मणा निष्पादितेन फलभोगेन (अकृतः) अकृत्रिमो जगदीश्वरः

(नास्ति) निष्पादयितुं प्राप्तुमशक्यः कथन्तर्हि क्रियस्तदाह (सः) उक्तविधो ब्राह्मणः (तद्विज्ञानार्थम्) ब्रह्मज्ञानाय (समित्पाणिः) समिधः पाणौहस्ते यस्य तादृशो यद्वा समित्समस्यगिद्धा दीप्तोपस्थिता वेदविद्या पाणौ हस्तामलकवद्यस्य तथाभूतः सन् (ब्रह्मनिष्ठम्) ब्रह्मणि परमात्मनि निष्ठा मनसः स्थितिर्यस्य तम् (श्रोत्रियम्) वेदपाठिनं वेदाशयज्ञम् (गुरुम्,एव) आचार्यमेव (अभिगच्छेत्) आभिमुख्येन गच्छेत् ॥

भा०—फलभोगोत्कण्ठयानुष्ठितस्य पुण्यकर्मणः फलप्राप्त्यापि ब्रह्मप्राप्तिरसम्भवा नहि कस्यचित्कर्मणः फलरूपं ब्रह्म किन्तु निष्कामकर्मानुष्ठानेनान्तःकरणशुद्धौ सत्यां ज्ञानाधिकारित्वं जायते । सोऽधिकारी ब्रह्मज्ञादाचार्यादुपदेशं गृह्णीयात् । स नास्ति जगति कस्यचित्सुखस्य भोगो यस्यादिमध्यावसानेषु क्वापि दुःखं नायात् किन्तु सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् । चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ एवं सुखभोगाभिलाषुणा दुःखमवश्यं भोक्तव्यम् । सुखभोगहेतुकार्यपदार्थाप्राप्तौ ब्रह्मज्ञानानुभवोद्भव आनन्दएव निर्दुःखः । इत्यादिप्रकारेणालोच्य जिज्ञासुना फलभोगोत्कण्ठातो विरक्तेन भवितव्यमित्याशयः ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(ब्राह्मणः) वेद का जानने वाला वा परमेश्वर के ज्ञान और प्राप्ति के लिये उत्सुक जिज्ञासु मनुष्य(कर्मचितान्) शुभ अशुभ कर्मों से फलभोग की इच्छा पूर्वक संचित किये (लोकान्) देखने योग्य सुख के हेतु सुन्दर स्त्री धन पुत्रादि पदार्थों को

(परीक्ष्य) परिणामादि से परीक्षा कर अर्थात् दुःख के हेतु समझ कर (निर्वेदम्) संसारी सुख भोग से उदासीनता को (आयात्) प्राप्त हो क्योंकि (कृतेन) कर्म से सिद्ध हुए फल भोग से (अकृतः) अकृत्रिम परमात्मा किसी से (नास्ति) सिद्ध नहीं हो सकता। तो कैसे जाना जा सकता है सो कहते हैं-(सः) वह उक्त प्रकार का ब्राह्मण (तद्विज्ञानार्थम्) उस ब्रह्म को जानने के लिये (समित्पाणिः) समिधा जिस के हाथ में अथवा सम्यक् उपस्थित वेदविद्या जिस को हस्तामलक के तुल्य प्रत्यक्ष है ऐसा हुआ (ब्रह्मनिष्ठम्) जिस का मन परमेश्वर में स्थित है उस (श्रोत्रियम्) वेदपाठी वेद के अभिप्राय को जानने वाले (गुरुम्,एव) गुरु के पास ही (अभिगच्छेत्) सन्मुख जावे ॥

भा०—फल भोग की उत्कण्ठा से अनुष्ठान सेवन किये पुण्य कर्म का फल मिलने से भी ब्रह्म की प्राप्ति वा ज्ञान होना असम्भव है क्योंकि किसी कर्म का फलरूप ब्रह्म नहीं है किन्तु फल की कामना छोड़कर सेवन किये कर्म से अन्तःकरण की शुद्धि होने पर ज्ञान का अधिकारी होता है वह अधिकारी ब्रह्मज्ञानी आचार्य से उपदेश ग्रहण करे। जगत् में सुख का भोग ऐसा कोई नहीं जिस के आदि मध्य वा अन्त्य में कभी दुःख न आवे किन्तु किसी कवि ने कहा है कि (सुखस्यानन्तरं०) सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख गाड़ी के पहिये के समान आते जाते बने रहते हैं। इस प्रकार सुख भोग के अभिलाषी को दुःख अवश्य भोगना पड़ता है। और सुख भोग के हेतु बनावटी पदार्थ के न मिलने पर ब्रह्मज्ञान के अनुभव से उत्पन्न हुआ आनन्द ही 'निर्दुःख है इत्यादि प्रकार से विचार कर जिज्ञासु पुरुष को फल भोग की उत्कण्ठा से विरक्त होना चाहिये यह अभिप्राय है ॥ १२ ॥

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय। येनाक्षरं

पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ १३ ॥

प०—तस्मै। सः। विद्वान्। उपसन्नाय। सम्यक्। प्रशान्तचित्ताय। शमान्वितायः। येन। अक्षरम्। पुरुषम्। वेद। सत्यम्। प्रोवाच। ताम्। तत्त्वतः। ब्रह्मविद्याम्॥ १३ ॥

अ०—गुरुणा किं कार्यमित्युच्यते—(सः, विद्वान्) (सम्यक्) (प्रशान्तचित्ताय) प्रकृष्टतया भोगवासनातः शान्तं चित्तमन्तःकरणमस्य तस्मै (शमान्विताय) इन्द्रियैरपि शान्त्या शुभकर्मणोऽनुष्ठात्रे (उपसन्नाय) समीपं प्राप्ताय (तस्मै) शिष्याय (येन) यादृशज्ञानेन (अक्षरम्) अविनाशिनम् (सत्यम्) सनातनम् (पुरुषम्) पूर्णं परमात्मानम् (वेद) जानाति (ताम्) तादृशीम् (ब्रह्मविद्याम्) (तत्त्वतः) याथातथ्येन (प्रोवाच) प्रवयादुपदिशेत् ॥

भा०—अक्षरशब्देन प्रकृतेरपि ग्रहणं जायतेऽतएव सत्यपुरुषशब्दावक्षरशब्देन ब्रह्मणो ग्रहणाय विशेषणत्वेन परिपठितौ। यथा यस्मिन् क्षेत्रे उप्तं बीजं नोत्पद्यते तत्र बुद्धिमता कृषकेन न वप्तव्यम्। तथैव विदुषा कुपात्रे विद्या न रक्षणीया तथा चोक्तम्—यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं

मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् । इत्यादिप्रकारकाधिकारिणे प्राप्ताय याथातथ्येन ब्रह्मविद्योपदेष्टव्या ॥ १३ ॥

भाषार्थः—गुरु को क्या करना चाहिये सो कहते हैं (सः,विद्वान्) वह विद्वान् गुरु (सम्यक्प्रशान्तचित्ताय) अच्छे शान्तचित्त वाले जिस के मन में विषय संबन्धी सुखभोग की वासना नहीं उस (शमान्विताय) इन्द्रियों से भी शान्ति पूर्वक शुभ कर्म के सेवन करने वाले (उपसन्नाय) समीप आये हुए (तस्मै) उस योग्य शिष्य के लिये (येन) जिस प्रकार के ज्ञान से (अक्षरम्) अविनाशी (सत्यम्) सनातन (पुरुषम्) पूर्णव्याप्त परमात्मा को (वेद) जानता है (ताम्) उस प्रकार की (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्या को (तत्त्वतः) यथार्थ स्वरूप से (प्रोवाच) उपदेश करे ॥

भा०—अक्षर शब्द से प्रकृति का भी ग्रहण होता है इसी कारण यहां अक्षर शब्द से ब्रह्म का ग्रहण होने के अर्थ सत्य और पुरुष शब्द विशेषण होने को पढ़े हैं। जिस खेत में बोया बीज उत्पन्न नहीं होता वहां जैसे बुद्धिमान् किसान को न बोना चाहिये वैसे विद्वान् को उचित है कि कुपात्र को विद्या न देवे। वेद में भी कहा है कि—हे विद्वन् जिस को तुम पवित्र अप्रमादी बुद्धिमान् ब्रह्मचारी जानो उसे विद्या देवो इत्यादि प्रकार के प्राप्त हुए अधिकारी पुरुष के लिये यथार्थ प्रकार से ब्रह्मविद्या का उपदेश करे ॥ १३ ॥

इति प्रथम मुण्डके द्वितीयः खण्डो मुण्डकस्य समाप्तः ॥

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः। तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥ १ ॥

प०—तत् । एतत् । सत्यम् । यथा । सुदीप्तात् । पावकात् । विस्फुलिङ्गाः । सहस्रशः । प्रभवन्ते । सरूपाः । तथा । अक्षरात् । विविधाः । सोम्य । भावाः । प्रजायन्ते । तत्र । च । एव । अपियन्ति ॥ १ ॥

अ०—इदानीमस्याः कार्यसृष्टेरुपादानं दर्शयति-(यथा) येन प्रकारेण (सुदीप्तात्) सुष्ठुप्रज्वलितात् (पावकात्) अग्नेः सकाशात् (सरूपाः) तुल्यस्वरूपाः (विस्फुलिङ्गाः) (सहस्रशः) (प्रभवन्ते) उद्गच्छन्ति । हे (सोम्य) सोममर्हत तत्सम्बोधने शान्तप्रज्ञ जिज्ञासो (तथा) तेनैव प्रकारेण (अक्षरात्) स्वरूपेणाविनश्वरात् कारणात् प्रधानात् (भावाः) भवन्त्युत्पद्यन्ते ते भावाः कार्याणि वस्तूनि (विविधाः) साङ्गोपाङ्गाः प्राणिनिकायाश्च (प्रजायन्ते) उत्पद्यन्ते (तत्र, च, एव) तस्मिन्नेव प्रधाने कारणे (अपियन्ति) प्रलीयन्ते ॥

भा०—अक्षरशब्दोऽत्र कारणरूपायाः प्रकृतेः पर्यायः। प्रकरणानुकूलं परमात्मनोऽपि वाचकोऽक्षरशब्दआयाति । अत्र चोत्तरमन्त्रेप्यक्षरशब्दोऽव्यक्तस्यैव वाचकोऽस्ति । इत्थमेव च तदेतत्सत्यमिति वक्तुमुचितम् । नहि जड़स्योपादानं चेतनं ब्रह्मेति सत्यं भवितुमर्हति पुरुषशब्देन ब्रुवतो जीवोत्पत्तिरप्यसत्यैवास्ति। जीवो नित्यइति प्रमाणशतस्य विद्यमानत्वात् । यद्यात्मा मल्लिनोऽ-

स्वच्छो विकारी स्यात्स्वभावतः। नहि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपीति च। अस्य शरीरादिकार्यस्य जगत उपादानं जडं प्रधानमेवास्ति नतु चेतनः परमात्मेत्याशयः ॥१॥

भाषार्थः—अब इस सृष्टि के उपादान कारण को दिखाते हैं—(यथा) जिस प्रकार से (सुदीप्तात्) अच्छे जले हुए (पावकात्) अग्नि से (सरूपाः) तुल्य रूप वाले (विस्फुलिङ्गाः) चिनगारे (सहस्रशः) हजारों (प्रभवन्ते) निकलते हैं। हे (सोम्य) शान्त बुद्धि वाले जिज्ञासु मनुष्य (तथा) वैसे ही (अक्षरात्) स्वरूप से अविनाशी प्रकृति नामक कारण से (भावाः) उत्पन्न हुए कार्य पदार्थ और (पुरुषाः) साङ्गोपाङ्ग प्राणियों के शरीर (प्रजायन्ते) उत्पन्न होते हैं और (तत्र,च, एव) उसी प्रधान कारण में (अपियन्ति) लय होते हैं ॥

भा०—यहां अक्षर शब्द कारणरूप प्रकृति का पर्याय वाचक है। प्रकरणानुकूल परमात्मा का वाचक भी अक्षर शब्द आता है। यहां अगले मन्त्र में भी अक्षर शब्द प्रकृति का ही वाचक है। इसी प्रकार (तत्,एतत्,सत्यम्) यह कहना ठीक बनता है क्योंकि जड़ जगत् का उपादान कारण चेतन ब्रह्म को मानना कदापि सत्य नहीं होसकता। और इस मन्त्र में पुरुष शब्द कर के ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति मानना भी असत्य ही है क्योंकि जीव नित्य है इत्यादि सैकड़ों प्रमाण विद्यमान हैं। एक विद्वान् ने लिखा है कि यदि जीवात्मा मलीन अपवित्र और स्वभाव से विकारी—बनने बिगड़ने वाला हो तो सैकड़ों जन्मों तक उपाय करने पर भी उस की मुक्ति नहीं हो सकती। इस कारण इस शरीरादि कार्य जगत् का उपादान कारण प्रकृति ही है किन्तु चेतन परमात्मा नहीं यह अभिप्राय है ॥ १ ॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥२॥

प०—दिव्यः। हि। अमूर्त्तः। पुरुषः। सः। बाह्याभ्यन्तरः। हि। अजः। अप्राणः। हि। अमनाः। शुभ्रः। हि। अक्षरात्। परतः। परः॥ २॥

अ०—इतः पूर्वमन्त्रे जगत उपादानकारणमुक्त्वा ततो विलक्षणः परमात्मेत्युच्यते (सः) परोक्षः (पुरुषः) पूर्णो व्याप्तः परमात्मा (दिव्यः) दिवि प्रकाशस्वरूपे स्वात्मनि भवो विद्यमानः। नहि संसार्यात्मवदिन्द्रियादिषु स कदाचिदपि तदाकारवृत्तिर्भवति (हि, अमूर्त्तः) निश्चितः सूक्ष्मः। नहि मूर्त्तवस्तुषु तिष्ठन्नपि जीवात्मवन्मूर्त्तः प्रत्यवभासते। जीवात्मा तु शरीराभिमानी सन् शरीरवदवभासतइति दृष्टचरम् (बाह्याभ्यन्तरः) बाह्येनाभ्यन्तरेण च साकं वर्त्तमानः। लोके बाह्यं वस्त्वाभ्यन्तरं न भवति नचाभ्यन्तरं बाह्यमिति तद्रूपैकान्तिको नास्ति (हि, अजः) कदाचिदपि कथमपि न जायते सर्वविधोत्पत्तिरहितः। यद्यपि जीवात्मा प्रकृतिश्चाजास्ति तथापि कथंचिदनयोर्जायमानत्वं स्वीकार्यं भवति। यथा जीवात्मा पुत्रादिरूपेण जायते प्रकृतेश्च विकारा घटपटादिरूपेण जायन्ते। स्वरूपेणाविकारित्वादनयोरजत्वं विद्वद्भिर्मन्यते। न तद्रूपरमात्मा क्वापि जायते। अतएव (अप्राणः) जीवात्मनीव प्राणसम्बन्धो यस्मिन् नास्ति (हि, अमनाः) यथा जीवात्मा मनोरूपसाधनेन

विजानाति मनसस्तमसि लीने सुषुप्तस्तिष्ठति तथा परेशो मनोऽन्तरेणैव सर्वं जानाति सुषुप्तश्च कदापि न भवति (शुभ्रः) शुद्धो निर्मलः (परतः) इन्द्रियादिभ्यः परस्मात् (अक्षरात्) स्वरूपेणाविनश्वरात् (परः,हि) सूक्ष्म एवास्ति नास्ति तस्मात्परं किमपि सूक्ष्मम् ॥

भा०—सर्वव्याप्तः प्रकाशमयो निराकारः सूक्ष्मतमः सर्वेन्द्रियसम्बन्धवर्जितः शुद्धः सनातनः प्रकृतेः परः परमेश्वरएव मुमुक्षुणोपासितव्य इत्याशयः ॥ २ ॥

भाषार्थः—इस से पूर्व मंत्र में जगत् का उपादान कारण कहा है उस से विलक्षण परमेश्वर है सो कहते हैं-(सः) वह परोक्ष (पुरुषः) पूर्णव्याप्त परमात्मा (दिव्यः) प्रकाशस्वरूप अपने आत्मा में सदाविद्यमान रहने वाला अर्थात् संसार में फसे जीवात्मा के तुल्य इन्द्रियादि में तदाकार वृत्ति वह कभी नहीं होता (हि,अमूर्त्तः) निश्चय कर सूक्ष्म अर्थात् स्थूल पदार्थों में विद्यमान रहता भी जीवात्मा के तुल्य शरीरधारी प्रतीत नहीं होता और जीवात्मा तो शरीर का अभिमानी हुआ शरीर के तुल्य अपने को मानता है यह प्रत्यक्ष है (बाह्याभ्यन्तरः) बाहरी और भीतरी सब पदार्थों के साथ वर्त्तमान है। लोक में बाहरी वस्तु कभी भीतरी नहीं होता और न भीतरी बाहर होता है वैसे वह एकदेशी नहीं है (हि,अजः) कभी भी कैसे ही उत्पन्न नहीं होता अर्थात् सब प्रकार की उत्पत्ति से रहित है। यद्यपि जीवात्मा और प्रकृति भी उत्पन्न न होने से अज हैं तो भी किसी प्रकार इन दोनों का उत्पन्न होना मानने पड़ता है। जैसे जीवात्मा किसी के सम्बन्ध में पुत्रादिरूप से प्रकट होता और घटपटादिरूप से प्रकृति के विकार बनते हैं स्वरूप से अविकारी होने से इन दोनों का अनुत्पन्न होना विद्वान् लोग मानते हैं और परमात्मा इस प्रकार भी कहीं उत्पन्न नहीं होता इसी से (अप्राणः) जीवात्मा के तुल्य प्राण का सम्बन्ध

जिस में नहीं (हि,अमनाः) जैसे जीवात्मा मनरूप साधन से विचारता जानता है और तमोगुण में मन के लीन होने पर सुषुप्तिदशा में पहुंच जाता है वैसे परमेश्वर मन के विना ही सब जानता है तथा कभी सुषुप्ति में नहीं जाता (शुभ्रः) परमात्मा सदा शुद्ध निर्मल (परतः) इन्द्रियादि से पर सूक्ष्म (अक्षरात्) स्वरूप से अविनाशी प्रकृति से भी (परः,हि) अति सूक्ष्म भी है किन्तु उस से अधिक सूक्ष्म कोई नहीं ॥

भा०—सब में व्याप्त, प्रकाशस्वरूप, निराकार, अत्यन्त सूक्ष्म, सब इन्द्रियों के सम्बन्ध से रहित, शुद्ध, सनातन और प्रकृति से परे जो परमेश्वर है वही मुमुक्षु पुरुष को उपासना करने योग्य है यह तात्पर्य जानो ॥ २ ॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३ ॥

प०—एतस्मात्। जायते। प्राणः। मनः। सर्वेन्द्रियाणि। च। खम्। वायुः। ज्योतिः। आपः। पृथिवी। विश्वस्य। धारिणी ॥ ३ ॥

अ०—इतः पूर्वं परमात्मनः प्राणेन्द्रियेभ्यः पृथग्भावः प्रदर्शितः स च जन्यजनकसम्बन्धेऽपि प्राप्तस्तद्विधानार्थमिदमाह (एतस्मात्) पूर्वोक्तात्सर्वप्राणेन्द्रियसम्बन्धविवर्जितात् निमित्तरूपात् परमात्मतः (प्राणः) अपाना-

दिभेदभिन्नो दशविधः शरीरस्थः (मनः) अन्तःकरणचतुष्टयम् (सर्वेन्द्रियाणि) भौतिकानि ज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि च (खम्) आकाशः शब्दगुणः (वायुः) द्वितीयं तत्त्वं वायुः (ज्योतिः) अग्निः (आपः) उदकम् (च) अपि (विश्वस्य) सर्वस्य चराचरस्य (धारिणी) धारणकर्त्री (पृथिवी) (जायते) उत्पद्यते ॥ ३ ॥

भा०—सर्गारम्भे जीवात्मानं शरीरधारणाय प्रयोजकः सूत्रात्मा ज्योतिर्मयो कारणवायुर्जायते तस्य च प्रेरकः परमात्मास्ति तमेव केचित्मरुत्तत्त्वनाम्ना व्याप्रियन्ते प्राणशब्देन च जीवनहेतुत्वात्तस्यैवोपादानम्। ततो द्वितीयदशायां महतोऽङ्कार उत्पद्यते यंमनःशब्देनात्र व्यवहरन्ति। ततः सूक्ष्मभूतानि तन्मात्राख्यानि ततश्च स्थूलभूतानि प्रत्यक्षे दृश्यानि जायन्ते सर्वेषामेषामुत्पादकः परमात्मैवास्ति। अर्थात् तस्य सर्वस्मात्पृथक्त्वेऽपि कार्यकारणरूपेण जगता साकं जन्यजनकसम्बन्धोऽस्त्येव। सत्येतस्मिन्सम्बन्धे न कथंचित्परमेश्वरो जगता सह लिप्यतइति भूतपूर्वः प्रतिषेधः साधुरेवावगन्तव्यः ॥३॥

भाषार्थः—दूसरे से पूर्व परमेश्वर का प्राण और इन्द्रियों से पृथक् होना दिखाया है। वह उत्पन्न करने में भी प्राप्त है उस को दिखाने के लिये यह कहते हैं (एतस्मात्) पूर्वोक्त सब प्राण और इन्द्रियों से रहित निमित्तरूप परमात्मा से (प्राणः) अपानादि नाम वाला दश प्रकार का शरीरस्थ वायु (मनः) मन बुद्धि चित्त अहङ्कार (सर्वेन्द्रियाणि) भौतिक पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय (खम्) शब्दगुण वाला आकाश (वायुः) दूसरा तत्त्ववायु (ज्योतिः) अग्नि (आपः) जल (च) और (विश्वस्य) सब चरा-

चर पदार्थों को (धारिणी) धारण करने वाली (पृथिवी) पृथिवी (जायते) उत्पन्न होती है ॥

भा०—सृष्टि के आरम्भ में जीवात्मा को शरीर धारण करने के लिये प्रेरक ज्योतिःस्वरूप सूत्रात्मा कारण वायु प्रकट होता उस का प्रेरक परमेश्वर है उसी को कोई महत्तत्त्वनाम से कहते हैं तथा कोई तमोनुद कहते हैं जीवन का हेतु होने से उसी का नाम प्राण भी है उस से दूसरी दशा में महान् से अहङ्कार होता है उसी को यहां वेदान्त में मन कहते हैं उस से पीछे पञ्चतन्मात्र सूक्ष्मभूत और इन से पीछे पंच स्थूल भूत प्रत्यक्ष में देखने योग्य उत्पन्न होते हैं। इन सब का उत्पादक परमात्मा ही है अर्थात् उस के सब से पृथक् होने पर भी कार्य कारणरूप जगत् के साथ जन्य जनक वा उत्पाद्य उत्पादक सम्बन्ध है ही। इस सम्बन्ध के होने पर भी परमेश्वर जगत् के साथ कदापि लिप्त नहीं होता इस लिये पहिले प्राणादि से पृथक् कहना भी ठीक ही समझना चाहिये ॥ ३ ॥

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ ॥

प०—अग्निः। मूर्धा। चक्षुषी। चन्द्रसूर्यौ। दिशः। श्रोत्रे। वाक्। विवृताः। च। वेदाः। वायुः। प्राणः। हृदयम्। विश्वम्।

अस्य। पद्भ्याम्। पृथिवी। हि। एषः सर्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ ॥

अ०—इदानीं विराट्रूपस्य वर्णनमाह (अस्य) परमात्मनः समुदितस्यैकीभूतस्य ब्रह्माण्डस्य च (अग्निः) सर्गारम्भे सर्वस्मात्पूर्वमुत्पन्नः सूक्ष्मरूपस्तमोनुदाख्यः (मूर्धा) सर्वादित्वाद्ब्रह्मोक्तयुक्तेस्तेजकत्वादुत्तमाङ्गत्व मुख्यः (चन्द्रसूर्यौ) मध्यान्तरिक्षवर्तिनौ सूर्याचन्द्रमसौ (चक्षुषी) चक्षुःस्थानीयौ। एताभ्यामहनि रात्रौ च सर्वान् सर्वं दर्शयति। ब्रह्माण्डश्च सर्वमेताभ्यामेव पश्यति। दर्शनहेतुत्वात्तयोश्चक्षुष्टवम् (दिशः) पूर्वादयः (श्रोत्रे) दिग्रूपेणावकाशदानत्वेव श्रावयति सत्येवचावकाशे ब्रह्माण्डस्थैः शब्दः श्रूयते (विवृताः) विस्तृताः (वेदाः) ऋग्वेदादयः (वाक्) जगदीश्वरो वेदैरेव मनुष्याय कर्त्तव्यमुपदिशति मनुष्याणां च सर्वो वाग्व्यापारो वेदादेव निस्मरति (वायुः, प्राणः) वायुनैव सर्वान् जीवयति वायौ सत्येव सर्वे जीवन्ति (विश्वम्) सर्वं चराचरं वस्तुजातम् (हृदयम्) हृत्स्थानीयं तदाधारत्वात् सर्वस्य परमात्मन्यवस्थितत्वात् (च) (पद्भ्याम्) पादरूपनिकृष्टसामर्थ्यात् (पृथिवी) जायते। यद्ब्राह्मस्य परमात्मनः पादरूपा निकृष्टस्थानीया पृथिव्यस्ति (हि, एषः, सर्वभूतान्तरात्मा) इत्येवमुक्तप्रकारेण प्रसिद्धः सर्वव्यापी भगवान् सर्वभूतानां प्राणिनामन्तर्मध्ये निरन्तरं प्राप्तोऽस्ति ॥

भा०—नन्वयत्र परमात्मनः साकारत्वमुच्यतइति शङ्कनीयम् । परमेश्वरं सर्वव्यापिनं मन्येतइति विधीयते । तत्कथं सर्वव्यापिनं भावयेदित्युपदिश्यते । सर्वशब्दवाच्यास्वारभ्यादयो येऽत्र संख्यातास्तेषु सर्वेषु पश्येत् । शरीरस्थितं जीवात्मानं यथा नेत्राद्यवयवैः कार्यमारभमाणं भावयन्त्यस्ति कश्चिच्चेतन आत्मास्मिन् कलेवरइति । तथैव ब्रह्माण्डे सूर्यचन्द्रनेत्राद्यवयवोपलक्षितैः कार्यमारभमाणो यः कश्चिदस्ति सएवेश्वरइति विभावयेत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—अब विराट्रूप का वर्णन करते हैं:—(अस्य) इस परमेश्वर का वा इकट्ठे हुए ब्रह्माण्ड का (अग्निः) सब से पहिले उत्पन्न हुआ सूक्ष्मरूप अन्धकार का नाशक कारणरूप तेजस तत्त्व सृष्टि के आरम्भ में सब का आदि होने और भोगने वाली शक्ति को उत्तेजित करने वाला होने से शिर के तुल्य मुख्य (चन्द्रसूर्यौ) मध्य आकाश में वर्त्तमान चन्द्रमा और सूर्य (चक्षुषी) नेत्रस्थानी हैं । परमेश्वर इन्हीं दोनों के द्वारा दिन और रात्रि में सब को सब वस्तु दिखाता है और सब ब्रह्माण्डस्थ प्राणी इन्हीं के प्रकाश द्वारा देखते हैं देखने के हेतु होने से सूर्य चन्द्रमा चक्षु हैं । (दिशः) पूर्वादि दिशा (श्रोत्रे) कान हैं । अवकाश देने से सब को सुनवाता है । अवकाश होने पर ही ब्रह्माण्डस्थ प्राणियों को शब्द सुन पड़ता है (विवृताः) विस्तृत (वेदाः) ऋग्वेदादि वेद जिस की (वाक्) वाणी हैं । परमेश्वर वेदों द्वारा ही मनुष्य के लिये कर्त्तव्य का उपदेश करता है और मनुष्यों का सब वाणी का व्यवहार वेद से ही निकलता है (वायुः) वायु जिस का (प्राणः) प्राण है वायु से ही सब को जीवित रखता और वायु के होने पर ही सब जीते हैं (विश्वम्) सब चराचर वस्तु मात्र जिस का (हृदयम्) हृदय स्थानी है क्योंकि वही सब का आधार उसी परमात्मा में

सब की स्थिति है (च) और (पद्भ्याम्) (पृथिवी) जिस के पगरूप निकृष्ट स्थानी पृथिवी है । अथवा उस के पगरूप निकृष्ट सामर्थ्य से पृथिवी उत्पन्न हुई है (हि,एषः,सर्वभूतान्तरात्मा) इस उक्त प्रकार से प्रसिद्ध सब में व्याप्त होने वाला परमात्मा सब प्राणियों के हृदय में निरन्तर प्राप्त हो रहा है ॥

भा०—इस मन्त्र में परमेश्वर का साकार होना कहा गया हो ऐसी शङ्का न करनी चाहिये क्योंकि यहां परमेश्वर को सर्व व्यापी माने ऐसा विधान है सो सर्वव्यापी की भावना कैसे करे यह उपदेश किया है । सर्व शब्द वाच्य अग्नि आदि पदार्थ जो इस मन्त्र में गिनाये हैं । उन सब में परमेश्वर को देखे । शरीर में रहने वाले जीवात्मा को जैसे नेत्रादि अवयवों से कार्य करते हुए को विचारते हैं कि इस शरीर में कोई चेतन आत्मा है वैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य चन्द्रमा रूप नेत्रादि अवयवों से कार्य चलाता हुआ जो कोई है वही परमात्मा है ऐसी भावना करे ॥ ४ ॥

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् । पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः ॥ ५ ॥

प०—तस्मात् । अग्निः । समिधः । यस्य । सूर्यः । सोमात् । पर्जन्यः । ओषधयः । पृथिव्याम् । पुमान् । रेतः । सिञ्चति । योषितायाम् । बह्वीः । प्रजाः । पुरुषात् । सम्प्रसूताः ॥ ५ ॥

अ०—इदानीं कार्यसृष्टावुत्पत्तिप्रकाराः प्रदर्श्यन्ते (तस्मात्) परमेश्वरात्पुरुषात्(अग्निः) भौतिकः स्थूलरूपो जाठरादिरूपश्चोत्पद्यते (यस्य) अग्नेः (सूर्यः) (समिधः) उत्तेजकोऽस्ति सूर्येण हि सर्वं प्रकाश्यते सूर्यप्रकाशेन प्रकाशितात् (सोमात्) चन्द्राग्निनः (पर्जन्यः) वायुरूपो मेघः प्रभवति तस्मात् (पृथिव्याम्) पतितात् (ओषधयः) सम्भवन्ति (पुमान्) ता भुक्त्वा पुंस्त्वमापन्नः शरीरी (योषितायाम्) योषाग्नौ (रेतः) वीर्यम् (सिञ्चति) तस्मादपत्यानि जायन्ते। एवम्(पुरुषात्) पूर्णात्परेशात्(बह्वीः) (प्रजाः) मनुष्याद्याः प्राणिनः (सम्प्रसूताः) सासुत्पन्नाः ॥

भावार्थः—अतः पुरुषात्तेजकोऽग्निरेवास्यां सृष्टौ मुख्यः प्रलयेऽन्धकारएव प्रधानः। यच्च कीदृशं किं वा दृश्यमस्ति नास्ति वेति वक्तुमशक्यम्। द्रष्टापि तदानीं न कश्चिदस्ति। सृष्टौ च द्रष्टा दृश्यप्रकारा दर्शनहेतु तेजश्चमिति त्रयमेव स्पष्टतया प्रतीयते तत्राग्निरेव सर्वस्य सूर्यविद्युदादिरूपेण दर्शकः। एवंभूतस्याग्नेरप्युत्पादकस्य सर्वशक्तिमतोऽनुसन्धानं ध्यानं च सुगुप्तया कार्यम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—अब कार्य सृष्टि में उत्पन्न हुए पदार्थों के प्रकार दिखाये जाते हैं (तस्मात्) उस पूर्ण व्याप्त परमेश्वर से (अग्निः) भौतिक स्थूलरूप और जाठरादिरूप अग्नि उत्पन्न होता है (यस्य) जिस अग्नि का (सूर्यः) सूर्य (समिधः) जलने वाले काष्ठों के तुल्य उत्तेजक है क्योंकि सूर्य से ही सब वस्तु प्रकाशित होता है सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित (सोमात्) चन्द्ररूप शीतल अग्नि से (पर्जन्यः) वायुरूप नामी मेघ उत्पन्न होता उस (पृथिव्याम्)

पृथिवी में गिरे हुए मेघ जल से (ओषधयः) ओषधियां उत्पन्न होतीं उन ओषधियों के फलरूप अन्न को खाकर (पुमान्) पुरुष पन को प्राप्त हुआ प्राणी (योषितायाम्) स्त्री रूप अग्नि में (रेतः) वीर्य को (सिञ्चति) छोड़ता है उस से सन्तान मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार (पुरुषात्) पूर्णव्याप्त परमेश्वर से (बह्वीः) बहुत (प्रजाः) मनुष्यादि प्राणी (सम्प्रसूताः) उत्पन्न हुए हैं ॥

भा०—भोगने वाली शक्ति को बढ़ाने वाला सुख कर इस सृष्टि में अग्नि ही है। प्रलय में अन्धकार ही सुख्य प्रधान है जहां कैसा अथवा क्या देखने योग्य है वा नहीं ऐसा कोई नहीं कह सकता। देखने वाला भी उस समय कोई नहीं रहता और रचना होने पर द्रष्टा देखने वाला देखने योग्य वस्तुओं के भेद और देखने का हेतु तेजस प्रकाश ये तीनों स्पष्ट रीति से प्रतीत होते हैं। इस जगत् में अग्नि ही सूर्य वा बिजुली आदि रूप से सब को दिखाने वाला है। इस प्रकार के अग्नि को उत्पन्न करने हारे सर्वशक्तिमान् परम पिता परमात्मा का ध्यान वा विचार सुकृत्त पुरुष को करना चाहिये ॥ ५ ॥

तस्माद्दचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च। संवत्सरं च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥ ६ ॥

प०—तस्मात्। ऋचः। साम। यजूंषि। दीक्षाः। यज्ञाः। च। सर्वे। क्रतवः। दक्षिणाः। च। संवत्सरम्। च। यजमानः। च।

लोकाः । सोमः । यत्र । पवते । यत्र । सूर्यः ॥ ६ ॥

अ०—सम्प्रसूतादिति पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते (तस्मात्) आदिपुरुषाज्जगदीश्वरात् (ऋचः) नियताक्षरपादविशिष्टा ऋग्वेदमंत्राः (साम) सामवेदः (यजूंषि) अनियताक्षरपादावसानानि यजुर्वेदवाक्यानि (दीक्षाः) ब्रह्मचर्याश्रमादिचिन्हधारणविशेषाः (च) अपि (यज्ञाः) अग्निहोत्रादयो महायज्ञाः (सर्वे) (क्रतवः) अग्निष्टोमवाजपेयादयः (च) अपि (दक्षिणाः) सर्वं सुवर्णादि धनं यद्यज्ञे ऋत्विगादिभ्यो दीयते (संवत्सरम्) उपलक्षणमेतत् कालविभागस्य (च) (यजमानः) यज्ञस्यानुष्ठाता (यत्र) (सोमः) चन्द्रमाः (यत्र) च (सूर्यः) (पवते) स्वस्वकिरणैर्वस्तूनि लोकेषु पुनाति ते (लोकाः) पृथिवीलक्षणादयः (यत्र कर्मानुगो यजमानो भ्रमति) उत्पन्नाः ॥

भा०—कर्मफलमनाश्रितेनाग्निहोत्रादियज्ञानुष्ठाय यजमानेन स्वकल्याणाय भावनीयो विषयउपदिश्यते—कर्मोपासनाज्ञानेषु पठितव्या वेदमन्त्रा यज्ञानामिति कर्त्तव्यता च परमात्मनैव वेदद्वारोपदिष्टा । दक्षिणाद्यर्थानि धनानि समयविभागो यत्र यज्ञोनुष्ठातव्यः । यज्ञस्य कर्त्ता कर्म साधकतममधिकरणं फलं च सर्वं तेनैव सृष्टं तस्यैव सर्वमिदं स एव सर्वस्याधिष्ठाताऽस्तु तस्याज्ञापालको भृत्यवत्कर्त्ता। दक्षिणादिकमङ्गं च सर्वं तस्यैवेति ध्यायताभिमानस्त्याज्यइतिशम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—पूर्व मन्त्र से यस्मात् (सम्प्रसूताः) पद की अनुवृत्ति आती है (तस्मात्) उस आदिपुरुष परमेश्वर से (ऋचः) जिन में अक्षर और पाद नियत हैं कि एक पाद में इतने अक्षर हों और एक मन्त्र में इतने पाद हों ऐसे ऋग्वेद के मन्त्र (साम) सामवेद (यजूंषि) जिन के अक्षर पादों की समाप्ति नियत नहीं ऐसे विषमछन्द युक्त यजुर्वेद के मन्त्र (दीक्षाः) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के भिन्न २ चिन्ह धारण करने (च) और (यज्ञाः) अग्निहोत्रादि महायज्ञ (च) तथा (सर्वे) सब (क्रतवः) अग्निष्टोम वाजपेयादि यज्ञ (च) और (दक्षिणाः) सब सुवर्णादि धन जो यज्ञ में पुरोहितादि को दिया जाता है (संवत्सरम्) वर्ष अयन पक्ष आदि काल का विभाग (च) और (यजमानः) यज्ञ करने वाला तथा (यत्र) जहां (सोमः) चन्द्रमा (यत्र,च) और जहां (सूर्यः) सूर्य लोक (पवते) अपने २ किरणों से लोकों में वस्तुओं को प्रकाशित करते वे (लोकाः) पृथिवी और नक्षत्रादि उत्पन्न हुए हैं कि जिन लोकों में अपने कर्मों के अनुसार यजमान भ्रमता है ॥

भा०—कर्म के फल का आश्रय न किये हुए अग्निहोत्रादि यज्ञ करने वाले यजमान को अपने कल्याण के लिये जैसा विचार करना चाहिये वह विषय अब कहते हैं । कर्म उपासना और ज्ञानकाण्डों में पढ़ने योग्य वेदमन्त्र परमेश्वर ने ही वेद द्वारा उपदेश किये हैं । दक्षिणादि के लिये धन, समय का विभाग जिस में यज्ञ कियाजाय इत्यादि प्रकार यज्ञ का करने वाला कर्म साधन आधार और फल सब परमेश्वर ने ही रचा उसी का यह सब है वही सब का स्वामी है मैं तो उस की आज्ञा का पालक नौकर के तुल्य करने वाला हूं दक्षिणादि तथा मैं सब उसी के हैं ऐसा ध्यान करते हुए यजमान को अभिमान छोड़ना चाहिये ॥ ६ ॥

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि । प्राणा-

प्राणो व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥ ७ ॥

प०—तस्मात् । च । देवाः । बहुधा । सम्प्रसूताः । साध्याः । मनुष्याः । पशवः । वयांसि । प्राणापानौ । व्रीहियवौ । तपः । च । श्रद्धा । सत्यम् । ब्रह्मचर्यम् । विधिः । च ॥ ७ ॥

अ०—(तस्मात्, च) परमेश्वरादेव (बहुधा) बहुप्रकारका विलक्षणबुद्धयो नानाविद्यासु निष्णाताः पूर्वजन्मानुभूतशुभकर्मजन्यसंस्कारसंस्कृतप्रज्ञाः सिद्धाः (देवाः) निर्मलनिकाया गार्भादिदोषेभ्यः पृथग्भूता मैथुनसृष्टेः प्राक् (सम्प्रसूताः) उत्पन्नाः (साध्याः) वर्त्तमाने जन्मनि शुभकर्मानुष्ठानैः सिद्धिमाप्तुमर्हाश्च देवान्तराः (मनुष्याः) विशिष्टविद्याबुद्धिविहीनाः (पशवः) गवादयः (वयांसि) पक्षिणः (प्राणापानौ) जीवनहेतू उच्छ्वासनिःश्वासौ (व्रीहियवौ) हविष्यार्थावन्नविशेषौ (तपः) शरीरसंस्कारार्थं कर्माङ्गं चान्द्रायणादिव्रतधारणं च (च) (श्रद्धा) यस्य गुणस्याग्रेण प्रज्ञायामास्तिक्यं कर्मणि प्रवृत्तिरुत्साहश्चित्तप्रसादश्च स श्रद्धारूपो गुणः (सत्यम्) यथाभूतस्यार्थस्य कथनं प्रियं च (ब्रह्मचर्यम्) उपस्थेन्द्रियनिग्रहः (विधिः, च) आज्ञा च—इदमित्थं कर्त्तव्यमिति ॥

भा०—मनुष्येष्वनेकभेदाः सन्ति तत्र देवाः पितरो मनुष्या इति त्रयः प्रधाना भेदाः । तत्र देवा द्विविधाः सिद्धाः साध्याश्च पूर्वजन्मानुभूतशुभकर्मसंस्कारैः शुद्धा धीमन्तः शीघ्रं प्राप्तविद्या जन्मत एव धर्मात्मानः सिद्धाः । वर्त्तमानजन्मनि क्रियमाणकर्मसिद्धिं प्राप्तुमर्हा साध्याः पितरो ज्ञानिनो मनुष्याः साधारणा विशिष्टविद्याबुद्धिरहितास्ततो विरुद्धाः परापकारायोद्यतास्तस्करादिनामभिः प्रसिद्धा असुरादिनामकाः । इत्यादयः पश्वादयश्च सर्वे सर्गारम्भे परमात्मन एवोत्पद्यन्ते ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(तस्मात्, च) उसी परमेश्वर से (बहुधा) बहुत प्रकार के विलक्षण २ बुद्धि वाले अनेक प्रकार की विद्याओं में निपुण पूर्वजन्म में अनुभव किये अच्छे कर्मों के सेवन से संचित हुए शुभ संस्कारों से शुद्ध की गयी जिन की बुद्धि है वे इष्टसिद्धि को प्राप्त (देवाः) निर्मलशरीरों वाले गर्भादि में होने वाले दोषों से रहित मैथुनी सृष्टि से पहिले (सम्प्रसूताः) उत्पन्न हुए और (साध्याः) वर्त्तमान जन्म में शुभकर्मों के सेवन से इष्टसिद्धि को प्राप्त होने योग्य द्वितीय प्रकार के देव होते हैं और तीसरे (मनुष्याः) विशेष विद्या बुद्धि रहित (पशवः) गौ आदि पशु (वयांसि) पक्षी (प्राणापानौ) जीवन के हेतु ऊपर और नीचे को चलने वाले वायुरूप प्राण (व्रीहियवौ) होमने योग्य धान और यव अन्न (तपः) शरीर की शुद्धि के लिये चान्द्रायणादि व्रत धारणरूप एक कर्म (च) और (श्रद्धा) जिस गुण के शरीर में होने से बुद्धि में आस्तिकपन, विश्वास, कर्म में प्रवृत्ति, उत्साह, और चित्त की प्रसन्नता होती है वह श्रद्धारूप गुण (सत्यम्) जैसा वस्तु हो वैसा तथा प्रिय वचन कहना (ब्रह्मचर्यम्) उपस्थ इन्द्रिय को वश में रखना रोकना (विधिः,च) और आज्ञा कि यह काम इस प्रकार करना चाहिये यह सब उसी परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है ॥

भा०—मनुष्यों में अनेक भेद हैं उन में तीन भेद मुख्य हैं देव, पितृ और मनुष्य, देव दो प्रकार के होते हैं सिद्ध तथा साध्य। पूर्व जन्म में सेवन किये शुभ कर्मों के संस्कारों से शुद्ध बुद्धिमान् शीघ्र ही विद्या को प्राप्त होने वाले और जन्म से ही धर्मात्मा सिद्ध देवता हैं और वर्त्तमान जन्म में क्रियमाण कर्मों से सिद्धि को प्राप्त होने योग्य साध्य कहाते हैं। दूसरे ज्ञानी मनुष्य पितर और विशेष विद्या बुद्धि रहित साधारण लोग मनुष्य हैं तथा इन से विरुद्ध पराई हानि करने को उद्यत तस्करादि नामों से प्रसिद्ध असुरादि नाम वाले होते हैं इत्यादि मनुष्य और पशु आदि सब सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ७ ॥

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः। सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्तसप्त ॥ ८ ॥

प०—सप्त। प्राणाः। प्रभवन्ति। तस्मात्। सप्तार्चिषः। समिधः। सप्तहोमाः। सप्त। इमे। लोकाः। येषु। चरन्ति। प्राणाः। गुहाशयाः। निहिताः। सप्तसप्त॥ ८॥

अ०—(सप्तार्चिषः) सप्तविधान्यर्चींषि स्वस्वविषयबोधकानि येषां ते (सप्तहोमाः) सप्तविधा होमा आदानानि विषयग्रहणानि येषां ते (सप्त) (प्राणाः) बाह्य-

विषयग्रहणशक्तयः शिरःस्था द्वे द्वे चक्षुःश्रोत्रनासिकाना-मेका च मुखस्य सप्तैव छिद्राण्यपि सन्ति (तस्मात्) आदिपुरुषात् (प्रभवन्ति) उत्पद्यन्ते तथा (समिधः) इन्द्रियगोलकस्थप्राणशक्तीनां काष्ठान्यग्नेरिवोद्बोधकाः सप्तविधा विषयाः (इमे) प्रत्यक्षाणि (लोकाः) दर्शनहेतूनि (सप्त) इन्द्रियछिद्राणि सन्ति (येषु) लोकेषु (गुहाशयाः) ध्यानादिसमये निद्रायां च गुहायां हृदयेऽन्तःकरणे शेरतइति गुहाशयाः (प्राणाः) जाग्रदादिसमये (चरन्ति) चलन्ति विचरन्ति । एवं भूताः प्राणाः परमात्मना प्रतिशरीरं (सप्तसप्त) (निहिताः) स्थापिताः ॥

भा०—सूक्ष्मा ज्ञानेन्द्रियशक्तयस्तासां गोलकानि विषयाद्यश्च सर्वं परमेश्वरेणैव सृष्टं प्रतिशरीरे स्थापितं च येनास्य जगतः सर्वो व्यवहारश्चलति । अतः सएव सर्वस्याध्यक्षः सर्वैर्जिज्ञासुभिरुपासनीयः ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(सप्तार्चिषः) सात प्रकार की अपने २ विषय को जताने वाली किरणें जिन की हैं तथा (सप्तहोमाः) सात प्रकार की विषय ग्रहण की शक्ति जिन में हैं ऐसे (सप्त) सात (प्राणाः) शिर में रहने वाली दो नेत्रों की दो कान की दो नासिका की और एक मुख की ये सात छिद्ररूप बाहिरी विषय को ग्रहण करने वाली शक्ति (तस्मात्) उस आदि पुरुष परमात्मा से (प्रभवन्ति) उत्पन्न होती हैं तथा (समिधः) इन्द्रियों के गोलकों में रहने वाली प्राण की शक्तियों के अग्नि को काष्ठों के तुल्य उत्तेजित करने वाले सात प्रकार के विषय तथा (इमे) ये प्रत्यक्ष (लोकाः) देखने के हेतु (सप्त) इन्द्रियों के सात छिद्र हैं कि (येषु) जिन में (गुहाशयाः) ध्यानादि वा निद्रा के समय में अन्तःकरण में सोने वाले (प्राणाः)

प्राण जाग्रत् आदि दशा में (चरन्ति) विचरते हैं ऐसे प्राण परमात्मा ने प्रत्येक शरीर में (सप्तसप्त) सात २ (निहिताः) स्थापित किये हैं ॥

भा०—ज्ञानेन्द्रियों की सूक्ष्म शक्तियां उन के गोलक और उन के विषयादि सब परमेश्वर ने ही रचे और प्रत्येक शरीर के साथ स्थापित किये हैं जिस से इस जगत् का सब व्यवहार चलता है इस कारण वही सब का अध्यक्ष और सब जिज्ञासुओं को उपासना करने योग्य है ॥ ८ ॥

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः। अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥९॥

प०—अतः। समुद्राः। गिरयः। च। सर्वे। अस्मात्। स्यन्दन्ते। सिन्धवः। सर्वरूपाः। अतः। च। सर्वाः। ओषधयः। रसः। च। येन। एषः। भूतैः। तिष्ठते। हि। अन्तरात्मा ॥९॥

अ०—(अतः) अस्मादुक्तात्परमेश्वरादेव (सर्वे) (समुद्राः) चारादिनामकाः (च) (गिरयः) हिमालयादयः पर्वताः (अस्मात्) परमात्मतएव(सर्वरूपाः) पुरस्ताद्दक्षिणत उत्तरतो वा गामिन्यः (सिन्धवः) गङ्गाद्या

नद्यः (अतः,च) अस्मादेवेश्वरान्निमित्तात् (सर्वाः, ओषधयः) यवाद्याः समुत्पन्नास्तासां परिणतस्तन्मूलफलादिभक्षणेन निष्पन्नः (रसः,च) रसोऽपि परमात्मनिमित्तादेव जातोऽस्ति (येन) रसेन धातुना परिणतैः (भूतैः) पञ्चभूतमयैर्मांसादिधातुभिः (एषः) ज्ञानपूर्वकक्रियाकरणेन प्रत्यक्षः (अन्तरात्मा) अन्तः हृदयावकाशे शरीरमध्येऽतति निरन्तरं प्राप्नोति बुद्धिवृत्तिभिर्मनसा वा रमतइति अन्तरात्मा सलिङ्गशरीरो जीवात्मा (हि) निश्चयेन (निहितः) तत्सर्वं परमात्मतएवोत्पन्नमिति सम्बन्धः ॥

भा०—परमात्मानं जिज्ञासुभिरेवमपि तस्यानुसन्धानं कार्यम् । प्रत्यक्षे दृश्यमानं पर्वतनदीसमुद्रजलान्नादिकं सर्वं प्राणिनामुत्पत्तिस्थितिहेतुकं यस्मान्निमित्तादुत्पन्नं सएवास्माभिरुपास्यः । नहि कार्यं किमप्यकर्तृकं भवितुमर्हति तस्माद्योऽस्य कर्त्ता सएवेश्वरइति भावनीयम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(अतः) इस उक्त परमेश्वर से ही (सर्वे) सब (समुद्राः) खारी आदि समुद्र (च) और (गिरयः) हिमालय आदि पहाड़ (अस्मात्) इस परमेश्वर से ही (सर्वरूपाः) पूर्व दक्षिण वा उत्तर को चलने वाली सब प्रकार की गङ्गादि नदियां (अतश्च) और इसी परमेश्वररूप निमित्त से (सर्वाः) सब (ओषधयः) ओषधियां उत्पन्न हुई हैं उन ओषधियों के मूल वा फलरूप अन्न आदि के भक्षण से परिणाम को प्राप्त होकर सिद्ध हुआ (रसः, च) रस भी परमेश्वर ने ही उत्पन्न किया है (येन) जिस परिणाम को प्राप्त हुए धातुरूप रस से (भूतैः) बनने वाले पंचभूत रूप मांसादि धातुओं से (एषः) यह ज्ञान पूर्वक क्रिया करने से प्रत्यक्ष (अन्तरात्मा) शरीर के बीच

हृदयरूप अवकाश में प्राप्त होने वाला बुद्धि की वृत्तियों वा मन के साथ रमण करता हुआ लिङ्ग शरीर के सहित जीवात्मा (हि) निश्चय कर के (निहितः) स्थित होता शरीर में ठहरता है। यह सब परमात्मा से ही उत्पन्न हुआ है ॥

भा०—परमेश्वर को जानने की इच्छा रखने वाले पुरुषों को इस निम्न लिखित प्रकार भी उस का अनुसन्धान करना चाहिये—प्रत्यक्ष में दीख पड़ने वाले पर्वत नदी समुद्र जल और अग्नादि सब पदार्थ [जिन से प्राणधारी शरीरों की उत्पत्ति स्थिति होती है] जिस निमित्त कारण परमेश्वर से उत्पन्न हुऐ हैं उसी की उपासना हम को करनी चाहिये क्योंकि बनावटी वस्तु कोई बिना बनाने वाले के नहीं बन सकता। इस लिये जो इस सब प्रत्यक्ष बनावटी जगत् का कर्त्ता है वही ईश्वर है ऐसी भावना करनी चाहिये ॥८॥

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परा-
मृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां
सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य १०

प०—पुरुषः। एव। इदम्। विश्वम्। कर्म। तपः। ब्रह्म। पराऽमृतम्। एतत्। यः। वेद। निऽहितम्। गुहायाम्। सः। अविद्याग्रन्थिम्। विऽकिरति। इह। सोम्य॥ १०॥

अ०—अस्या उपनिषदः प्रारम्भे तृतीयमन्त्रे शौनकेनाङ्गिरसं प्रति पृष्टम्। ततोऽङ्गिरा एतावदुक्त्वोपसंहरति—हे (सोम्य) प्रियशिष्य शौनक (कर्म) क्रियामात्रम् (तपः) ज्ञानम् (पराऽमृतम्) परं प्रकृष्टमुत्तमं च तदमृतमविना-

श्यनादि नित्यम् (ब्रह्म) वेदः (इदम्) प्रत्यक्षे दृश्यमानं जगच्च (विश्वम्) सर्वम् (पुरुषएव) पूर्णे व्याप्ते परमात्मन्येवास्ति सएव सर्वस्याधारः। अर्थादीदृशो महान् सोऽस्ति यस्य मध्येऽनन्तत्वेन प्रतीयमानमपि जगत्प्रविष्टमेकदेशिवदुर्वर्त्तते। यद्येवं बृहदस्ति तर्हि कथं ज्ञातुमर्हइत्याह—(यः) पुरुषः (एतत्) उक्तं ब्रह्म (गुहायाम्) स्वस्य बुद्धौ (निहितम्) स्थितम् (वेद) जानाति (सः) (अविद्याग्रन्थिम्) अविद्याया बन्धनहेतुकाया रज्जोरिव ग्रन्थिम् (इह) संसारे (विकिरति) छिनत्ति ॥

भा०—यद्यपि परमेश्वरः सर्वस्मान्महानस्ति, नास्ति तस्मादधिकं महत्तरं तत्तुल्यं वा किमपि तथापि सर्वस्मिन् प्रविष्टो निर्मलदर्पणे रूपमिव शुद्धान्तःकरणे सत्येव जिज्ञासुनोपलभ्यते नहीतस्ततो भ्रमितव्यम्। उपायमनुतिष्ठता जिज्ञासुना स्वस्यैव हृदये भावनीयः ॥१०॥

भाषार्थः—इस मुण्डक उपनिषद् के प्रारम्भ के तृतीय मंत्र में शौनक ऋषि ने अङ्गिराऋषि के प्रति पूछा है तिस पर अङ्गिरा इतना उपदेश करकर अन्त में दिखाते हैं कि हे (सोम्य) प्रिय शिष्य शौनक (कर्म) क्रियामात्र (तपः) ज्ञान (परामृतम्) सब से उत्तम और अविनाशी नित्य (ब्रह्म) वेद तथा (इदम्) यह प्रत्यक्ष में दीख पड़ने वाला (विश्वम्) सब जगत् (पुरुषएव) पूर्णव्याप्त परमात्मा में ही ठहरा हुआ है वही सब का आधार है। अर्थात् वह ऐसा बड़ा है जिस के बीच में अनन्त प्रतीत होने वाला जगत् भी एकदेशी के तुल्य प्रविष्ट होरहा है। जब ऐसा बड़ा है तो हम अल्प सामर्थ्य वाले कैसे उस को जान सकते हैं? सो कहते हैं (यः) जो (एतत्) इस उक्त परमेश्वर को (गुहायाम्) अपनी बुद्धि

में (निहितम्) स्थित (वेद) जानता है (सः) वह (अविद्या-ग्रन्थिम्) बन्धन की हेतु रस्सी के तुल्य अविद्या की गांठ को (इह) इस जगत् में (विकिरति) काटता है

भा०—यद्यपि परमेश्वर सब से बड़ा है उस से अधिक बड़ा वा उस के तुल्य कोई नहीं है तो भी सब जगत् में प्रविष्ट निर्मल दर्पण में रूप दीखने के तुल्य शुद्ध अन्तःकरण होने पर ही जिज्ञासु पुरुष को प्राप्त होता है । इधर उधर भ्रमण नहीं चाहिये । उपाय करने वाले को अपने अन्तःकरण में ही ध्यान करना चाहिये ॥ १० ॥

इति द्वितीय मुण्डके प्रथमखण्डः समाप्तः ॥

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम् । एजत्प्राण-न्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद् यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥१॥

आविः । सन्निहितम् । गुहाचरत् । नाम । महत् । पदम् । अत्र । एतत् । समर्पितम् । एजत् । प्राणत् । निमिष-त् । च । यत् । एतत् । जानथ । सदसत् । वरेण्यम् । परम् । विज्ञानात् । यत् । वरिष्ठम् । प्रजानाम् ॥ १ ॥

अ०—प्रथमखण्डे यस्माद् ब्रह्मण उत्पत्तिर्दर्शिता तस्या-व द्वितीयखण्डे स्वरूपं निरूप्यते (आविः) योगिनां

ज्ञानिनां हृदये आविर्भूतम् (सन्निहितम्) सदा तेषां समीपस्थम् (गुहाचरत्) ज्ञानिनां बुद्धिवृत्तिषु विद्यमानम् (नाम) प्रसिद्धम् (महत्) (पदम्) प्राप्तुं योग्यम् (प्रजानाम्) राज्ञोपेक्षयेव निकृष्टानां लौकिकविज्ञानवतां बुद्धिमतां मनुष्याणाम् (विज्ञानात्) शिल्पज्ञानात्(परम्) दूरमविज्ञातम् (वरिष्ठम्) वरेषूत्तमेषूत्तमतरमतएव (वरेण्यम्) ज्ञातुमभिलषितव्यम् (सत्) ज्ञानिनां बुद्धौ विद्यमानम् (अमत्) लौकिकसुखभोगासक्तानां प्रज्ञायामविद्यमानमेवंभूतं यद् ब्रह्मास्ति। हे मनुष्याः(एजत्) कम्पमानं वृक्षादिकम् (प्राणत्) प्राणक्रियाविशिष्टं मनुष्यपश्वादिकं प्राणिमात्रम्(निमिषत्) प्राणक्रियारहितं मरणावस्थं प्राप्तम् (च) अनिमिषदपि मृतं मृत्पाषाणादिकं च (यत्,एतत्) सर्वं जगद् यूयम् (जानथ) जानीथ तत् (एतत्) (अत्र) अस्मिन् ज्ञानिभिः स्वान्तःकरणएवोपलभ्यमाने ब्रह्मणि (समर्पितम्) संलग्नम् (अस्य) जगतस्तदेवाधाररूपमस्ति ॥

भा०—यस्मिन् ब्रह्मणीदं जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलयदृश्यत्वे तिष्ठति तदेवं बृहत्सादपि सर्वत्र व्याप्तत्वाद् ज्ञानिभिः स्वहृदये प्रकाशमानमानन्दस्वरूपं योगाभ्यासेनोपलभ्यते। अन्यैश्च जन्मसाहस्रेष्वपि प्राप्तुमशक्यम्। ब्रह्मज्ञान्यपेक्षया लौकिका विद्वांसोऽप्यज्ञानिनएव तेषां तीव्राऽपि बुद्धिर्ब्रह्मणि न गच्छति ॥ १ ॥

भाषार्थः—प्रथमखण्ड में जिस ब्रह्म से उत्पत्ति दिखाई है उसी का इस दूसरे खण्ड में स्वरूप निरूपण करते हैं (आविः) ज्ञानी

योगी लोगों के हृदय में प्रकट स्वरूप (अभिष्ठितम्) सदा उन के समीपस्थ (गुहाचरत्) ज्ञानियों की बुद्धि की वृत्तियों में विद्यमान (नाम) प्रसिद्ध (महत्) सब से बड़ा (पदम्) प्राप्त होने योग्य (प्रजानाम्) जैसे राजा की अपेक्षा प्रजा निर्बल वा नीच होती वैसे परमेश्वर की अपेक्षा नीची दशा में स्थित सब मनुष्यों के (विज्ञानात्) शिल्प सम्बन्धी ज्ञान से (परम्) दूर (वरिष्ठम्) सब उत्तम पदार्थों में अत्यन्त उत्तम इसी कारण (वरेण्यम्) जिस को जानने की अभिलाषा करनी चाहिये (सत्) ज्ञानी लोगों की बुद्धि में विद्यमान (असत्) लौकिक सुख भोग में आसक्त मनुष्यों की बुद्धि में अविद्यमान जो ब्रह्म है। हे मनुष्यो (एजत्) वायुद्वारा हिलने वाले वृक्ष घासादि (प्राणत्) प्राणकी क्रिया श्वास वाले मनुष्य पशु आदि प्राणी मात्र और (निमिषत्) प्राण चेष्टा से रहित मरण को प्राप्त (च) तथा मरेहुए वा मट्टी पत्थर आदि जड़ पदार्थ (यत्,एतत्) जो इस सब जगत् को तुम लोग (जानथ) जानते हो वह (एतत्) यह सब (अत्र) इस ज्ञानियों को अपने ही अन्तःकरण में प्राप्त होने योग्य ब्रह्म में (समर्पितम्) संयुक्त स्थित है अर्थात् इस जगत् का वही ब्रह्म आधारस्वरूप है॥

भा०—जिस ब्रह्म में यह जगत् उत्पत्ति स्थिति प्रलय तीनों दशा में स्थित रहता वह ऐसा बड़ा होने पर भी सर्वत्र व्याप्त होने से ज्ञानी लोगों को योगाभ्यास द्वारा अपने हृदय में प्रकाशमान आनन्दस्वरूप ब्रह्म प्राप्त होता है। अज्ञानी लोग हजारों जन्मों में भी उस को प्राप्त नहीं हो सकते। और ब्रह्मज्ञानी वा जीवन्मुक्त की अपेक्षा लौकिक विद्वान् भी अज्ञानी ही माने जाते हैं उन की लोक में तीव्र बुद्धि भी ब्रह्म में नहीं पहुंचती॥ १॥

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु यस्मिन् लो-
का निहिता लोकिनश्च। तदेतदक्षरं

ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः। तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ॥ २ ॥

प०—यत्। अर्चिमत्। यत्। अणुभ्यः। अणु। यस्मिन्। लोकाः। निहिताः। लोकिनः। च। तत्। एतत्। अक्षरम्। ब्रह्म। सः। प्राणः। तत्। उ। वाक्। मनः। तत्। एतत्। सत्यम्। तत्। अमृतम्। तत्। वेद्धव्यम्। सोम्य। विद्धि ॥ २ ॥

अ०—पुनस्तदेवोच्यते हे (सोम्य) प्रिय शिष्य (यत्) (अर्चिमत्) सर्वप्रकाशहेतुत्वात् दीप्तिमत् (यत्) (अणुभ्यः) सूक्ष्मेभ्यः प्रकृत्यादिभ्यः (अणु) सूक्ष्मतरम् (यस्मिन्) ब्रह्मणि (लोकाः) दृष्टिपथगताः पृथिव्यादयः (लोकिनः) लोका येषां सन्ति ते तत्रावस्तारो मनुष्यादयः प्राणिनः (निहिताः) स्थिताः (तत्, एतत्, ब्रह्म) (अक्षरम्) अविनश्वरम् (सः) (प्राणः) सर्वस्य जीवनहेतुः (तत्, उ) तदेव (वाङ्मनः) वाचो वेदरूपस्य मननशक्तेश्च निमित्तम् (तत्, एतत्) ब्रह्म (सत्यम्) सदैकरसतया विद्यमानम् (तत्, अमृतम्) न कदापि म्रियते (तत्) वेद्धव्यम्) मनसा ताड्यम्। मनस्तस्मिन् चालयितव्यम्। एवं प्रकारेण (विद्धि) जानीहि ॥

निवेदन ॥

सब महाशयों को ज्ञात हो कि सरस्वतीयन्त्रालय स्थापित होगया। बहुधा ग्राहक महाशय जानते होंगे कि मैं ने जो २ काम उठाया है और कृपा कर भेजता हूं वह जैसा होना चाहिये वैसा नहीं छपता था जिस से सर्वसाधारण को दर्शनीय और पढ़ने में सरल सुवाच्य जान पड़े यह छापे का दोष था इसी दोष को पहिले से हटाने के लिये मनुभाष्य का अङ्क ऐसे यन्त्रालय में नहीं छपाया था इसी से इतनी ढील हुई नहीं तो अब तक मनुस्मृति भाष्य का अङ्क ग्राहकों के पास पहिले ही पहुंच गया होता अब ग्राहक महाशय क्षमा करें छपने का आरम्भ होगया है अब शीघ्र ही अङ्क आवे गा। और सब कुशल है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा धर्म की उन्नति चाहने वालों की सहायता करे और अधर्मियों को दुष्ट विचारों से बचावे ॥

धन्यवाद ॥

श्रीयुत झुन्नालाल जी शर्मा अफजलगढ़ निवासी ने इस मास में ४) उपनिषद्भाष्य की सहायता में धर्मार्थ दिया है। परमेश्वर उन का उत्साह धर्म में बढ़ावे और दानशक्ति प्रदान करे ॥

पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

वाजसनेयोपनिषद् (ईश) संस्कृत भाषावृत्ति सहित ≠) तलवकारोपनिषद् (केन) संस्कृत भाषावृत्तिसहित ।) कठोपनिषद् संस्कृतभाषावृत्तिसहित १) प्रश्नोपनिषद् संस्कृत भाषावृत्तिसहित ॥।) डा० व्यय पृ० ४ के ≠) तीर्थविषय ≠) विवाहव्यवस्था ।) हितोपदेसंवाद ≠) न्यायदर्शन मूलसूत्रपाठ ।) हिन्दी का प्रथमपुस्तक ।) कुमारीभूषण ≠) शास्त्रार्थखुर्जा ≠) आर्यसिद्धान्त १ । २ । ३ भाग ३६ अङ्क जिल्द सहित २।) आर्यसिद्धान्त प्रथम द्वितीय तृतीय भाग ३६ अङ्क विना जिल्द २) इन पुस्तकों का डाक महसूल पृथक् ग्राहक को देना होगा जो एक २ मँगावेंगे उन को आर्यसिद्धान्त तथा उपनिषद् कोड़ के प्रत्येक पर)॥ डाकव्यय देना होगा जो महाशय इन में से ५) रु० तक के पुस्तक लेंगे उन को २०) रु० सैकड़े के हिसाब से कमिशन के पुस्तक अधिक दिये जावेंगे अर्थात् ५) में ६) रु० के पुस्तक मिलेंगे ॥

नारीसुदशाप्रवर्त्तक भाग चारो १।) सत्यासत्यविचार ≠) आर्यसमाजपरिचय ।) स्वधर्मरक्षा ।) गोरक्षार्थदीपिका ≠) प्रेमप्रभाव ≠)॥

जड़तत्त्वविज्ञान १ भाग ≠) जड़तत्त्वविज्ञान २ भाग ≠) विभक्तियों का वर्णन ≠) सन्धिविषय ≠) अव्ययार्थ ≠) सर्वनामलंची ≠) ये छः पुस्तक वा० मथुरप्रसाद जी सुपर वाइजर के बनाये हैं ॥

ये सब पुस्तक बाहर के कमिशन पर विक्रयार्थ हैं प्रत्येक पर डाक व्यय)॥ है कई पुस्तक इकट्ठे लेने पर डाकव्यय कम लगेगा इन पर कमिशन न मिलेगा जिन महाशयोंको लेना हो सुझ से मँगालेवें ॥

भीमसेन शर्मा—सम्पादक आर्यसिद्धान्त—प्रयाग

॥ ओ३म् ॥

उपनिषद्भाष्यम् ॥

श्री परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना

शिष्येण भीमसेनशर्मणा

लोकोपकाराय संस्कृतभाषयारब्धं

भाषया च व्याख्यातम् ॥

भाग २ | ॥ मासिकपत्रम् ॥ | खण्ड १

ता० १ दिसम्बर मार्ग संवत् १९४०

वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २)

इस की रजिष्टरी कराई गई है किसी को छापने का अधिकार नहीं है

श्रीमोपकारक यन्त्रालय में मुद्रित हुआ ॥

फूलपुर ॥

सन १८८२

पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

वाजसनेयोपनिषद् (ईश) संस्कृत भाषावृत्ति सहित ≠) तलव-कारोपनिषद्(केन) संस्कृत भाषावृत्तिसहित।) कठोपनिषद् संस्कृ-तभाषावृत्ति सहित १) प्रश्नोपनिषद् संस्कृत भाषावृत्तिसहित ॥) डाकव्यय पृ०४ के ≠) तीर्थविषय ≠) विवाहव्यवस्था।) हेताहेतसंवाद ≠) न्यायदर्शन मूलसूत्रपाठ।) हिन्दी का प्रथम पुस्तक ≠) कुमारीभू-षण ≠) शास्त्रार्थखुर्जा ≠) आर्यसिद्धान्त १।२।३ भाग ३६ अङ्क जिल्द सहित २) आर्यसिद्धान्त प्रथम, द्वितीय, तृतीय भाग ३६ अङ्क विना जिल्द २) इन पुस्तकों का डाक महसूल पृथक् ग्राहक को देना होगा जो एक २ मगावेंगे उन को आर्यसिद्धान्त तथा उप-निषद् छोड़ के प्रत्येक पर ≠) डाकव्यय देना होगा जो महाशय इन में से ५) रु० तक के पुस्तक लेंगे उन को २०) रु० सैकड़े के हिसाब से कमिशन के पुस्तक अधिक दिये जावेंगे अर्थात् षष्ठांश के हिसाब से ५) रु० में ६) रु० के पुस्तक मिलेंगे ॥

नारीसुदशाप्रवर्त्तक भाग चारो १) सत्यासत्यविचार ≠) आर्य-समाजपरिचय।) स्वधर्मरक्षा।) गोरक्षार्थदीपिका ≠) प्रेमप्रभाव ≠) ॥

जड़तत्त्वविज्ञान १ भाग ≠) जड़तत्त्वविज्ञान २ भाग ≠) विभ-क्तियों का वर्णन ≠) सन्धिविषय ≠) अव्ययार्थ ≠) सर्वनामयन्त्री ≠) ये छः पुस्तक बा० मथुरादास जी सुपरवाइजर के बनाये हैं ॥

ये सब पुस्तक बाहर के कमिशन पर विक्रयार्थ हैं प्रत्येक पर डाक व्यय ≠) है कई पुस्तक इकट्ठे लेने पर डाकव्यय कम लगेगा इन पर कमिशन न मिलेगा जिन महाशयों को लेना हो मुझ से मँगा लेवें ॥

इस वार स्वामि श्रीमद्दयानन्दसरस्वती जी महाराज का चित्र प्रतिबिम्ब (तस्वीर) दर्शनीय और बड़ा पण्डित गोपालरावहरि शर्मा ने बनवाया है वह मेरे पास भी मिलता है और उक्त महा-शय के निकट फर्रुखाबाद से भी मिले गा जिन महाशयों को लेना हो मँगावें मूल्य १) डाकव्यय पृथक् देना होगा ॥

भीमसेन शर्मा—सम्पादक आर्यसिद्धान्त—प्रयाग

भा०—यथाऽत्यन्तसूक्ष्मस्य लक्ष्यस्य वेधनं कठिनं भवति तथैव सर्ववस्तुमात्रात्सूक्ष्मतरस्य ब्रह्मणो ज्ञानं क्लिष्टमस्ति तत्र सुहुर्मुहुर्मनश्चालनेन कर्त्तव्यं यतो नाऽगमतया कश्चिज्ज्ञातुं शक्नोति ॥ २ ॥

भाषार्थः—फिर उस विषय को कहते हैं—हे (सोम्य) हे शिष्य सौनक (यत्) जो (अर्चिमत्) सब सूर्यादि प्रकाशक पदार्थों का कारण होने से दीप्तिवाला (यत्) जो (अणुभ्यः) प्रकृति आदि सूक्ष्मपदार्थों से भी (अणु) अतिसूक्ष्म (यस्मिन्) जिस ब्रह्म में (लोकाः) दृष्टि में आने वाले पृथिव्यादिलोक (च) और (लोकिनः) पृथिव्यादि में बसने वाले मनुष्यादि प्राणी (निहिताः) स्थित हैं (तत्,एतत्,ब्रह्म) वह यह ब्रह्म (अक्षरम्) अविनाशी (सः) वह (प्राणः) सब का जीवन हेतु (तत्,उ) वही (वाङ्मनः) वेदरूप वाणी और मननशक्ति का निमित्त (तत्,एतत्) वही ब्रह्म (सत्यम्) सदा एक रस रूप से विद्यमान (तत्,अमृतम्) वह कभी नहीं मरता (तत्) वह (वेद्धव्यम्) मन से ताड़ित करना चाहिये अर्थात् उस की ओर बार २ मन लगाओ इस प्रकार से उस को (विद्धि) जानो ॥

भा०—जैसे अति सूक्ष्म लक्ष्य का बींधना कठिन है वैसे उस वस्तुमात्र से अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म का ज्ञान भी बहुत कठिन है उस में बार २ मन को चला कर ज्ञान करना चाहिये क्योंकि सुगम रीति से ब्रह्म को कोई नहीं जान सकता ॥ २ ॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं सन्धयीत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥ ३ ॥

प०—धनुः । गृहीत्वा । औपनिषदम् । महास्त्रम् । शरम् । हि । उपासा । निशितम् । सन्धीयत । आयम्य । तद्भावगतेन । चेतसा । लक्ष्यम् । तत् । एव । अक्षरम् । सोम्य । विद्धि ॥ ३ ॥

अ०-इदानीमङ्गिरा ऋषिः शौनकं संबोधयन्नुक्तं वेद्यं च स्पष्टयन्पुनराह-हे(सौम्य) प्रियवर शौनक जिज्ञासुर्जनः(औपनिषदम्) उपनिषत्सु ब्रह्मविद्योपपादकनिबन्धेषु भवं वक्ष्यमाणम्(महास्त्रम्) महच्च तदस्त्रम्(धनुः) धनुरिव लक्ष्यप्राप्तिहेतुकम् (गृहीत्वा) स्वीकृत्य तस्मिन्धनुषि (उपासा) ध्येयस्य ब्रह्मणो नित्यमभिध्यानेन (निशितम्) तीक्ष्णीकृतम् (शरंहि) तीक्ष्णबुद्धिरूपं बाणमेव (सन्धीयत) सन्धानं कुर्यात् लक्ष्यब्रह्माभिमुखं योजयेदित्यर्थः (तद्भावगतेन) तस्य ब्रह्मणो भावो भावना तस्यां लग्नेन (चेतसा) मनसा (आयम्य) धनुराकृष्य (लक्ष्यम्) विध्येदिति शेषः । हे शौनक एतेन कर्म्मणा (तदेव) पूर्वोक्तम्(अक्षरम्) अविनश्वरं ब्रह्मैव (विद्धि) जानीहि ॥

भा०—लौकिकलक्ष्यवद् ब्रह्मापि ताडितं खण्डितं वा भवेदिति माभूत्कस्यचिद्व्यामोहइति मन्त्रान्तःस्थेनाक्षरशब्देन ध्वन्यते । तथा लौकिकोऽयं दृष्टान्तो जिज्ञासोः सुलभतया बोधार्थः । यथा व्याधा लक्ष्ये बुद्धिवृत्तिमेकीकृत्य तन्मनसो भूत्वा विध्यन्ति स्वल्पेऽपि प्रमादे वेधनमसम्-

भवम्। एवमन्यापि जिज्ञासुः सर्वतो बुद्धिवृत्तिमाकृष्यध्येये ब्रह्मण्येव मुहुर्मुहुर्निवेशयेत्। एवं कृते दुःखाद्विमुच्यते ३

भाषार्थः—अब अङ्गिरा ऋषि शौनक को बताकर उक्त लक्ष्य को प्रगट करते हुए कहते हैं कि हे (सोम्य) प्रियवर शौनक जिज्ञासु पुरुष को योग्य है कि (औपनिषदम्) ब्रह्मविद्या सम्बन्धी पुस्तकों में जिस का विशेष व्याख्यान है उस अगले मन्त्र में कहे (महास्त्रम्) बड़े अस्त्र (धनुः) धनुष के तुल्य लक्ष्य के प्राप्त होने में हेतु वाचक शब्द को (गृहीत्वा) लेकर उस शब्दरूप धनुष में (उपासा) उपासना से (निशितम्) तीक्ष्ण किये (शरंहि) बुद्धिरूप बाणको संयुक्त करे (तद्भावगतेन) उसी ब्रह्म के ध्यान में लगे हुए (चेतसा) मन से (आयम्य) वाचकरूप धनुष को तान कर (लक्ष्यम्) लक्ष्य को प्राप्त होवे। हे शौनक इस प्रकार करनेसे (तद्वेद्ध) उसी (अक्षरम्) अविनाशी परमात्मा को (विद्धि) जानो॥

भा०—इस मन्त्र के अन्त में अक्षर शब्द कहने से यह भी प्रयोजन निकलता है कि लक्ष्य के तुल्य परमेश्वर भी मारा जाता है ऐसी शङ्का किसी को न हो क्योंकि वह अविनाशी है। लौकिक दृष्टान्त का प्रयोजन यही है कि जिज्ञासु को सुगम रीति से बोध हो जावे। जैसे बहेलिया लोग लक्ष्य में बगला के तुल्य चित्त को लगाकर प्रवृत्त होते हैं थोड़ा भी प्रमाद करें तो उन का कार्य्य सिद्ध होना असम्भव है। इसी प्रकार यहां भी जिज्ञासु मनुष्य अपनी बुद्धि को सब ओरसे रोक कर उपास्य ब्रह्म में ही लगावे ऐसा करने में दुःख से छूट जाता है॥ ३॥

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ ४॥

प्रणवः । धनुः । शरः । हि । आत्मा । ब्रह्म । तत् । लक्ष्यम् । उच्यते । अप्रमत्तेन । वेद्धव्यम् । शरवत् । तन्मयः । भवेत् ।

अ०-पूर्वोक्तरूपकउपमानावयवैरुपमेयस्यैक्यं स्पष्टयति (प्रणवः) तस्य परमात्मनो वाचक ओमिति शब्दः (धनुः) (आत्माहि) जीवात्मैव (शरः) बाणः (तद्ब्रह्म,लक्ष्यम्,उच्यते) (अप्रमत्तेन) प्रमादरहितेन ध्यानादिसाधनतत्परेण (वेद्धव्यम्) विद्ध्वा च (शरवत्) लक्ष्ये लग्नबाणवत् (तन्मयः) तदाकारवृत्तिः (भवेत्) ॥

भा०-यथा बाणो लक्ष्यं प्रविशति तथैव सूक्ष्मा बुद्धिर्ध्यानाद्युपायेन जिज्ञासुना ब्रह्मणि प्रवेष्टव्या ॥४॥

भाषार्थः-पूर्व कहे रूपकालङ्कार में उपमान के अवयवों के साथ उपमेय की एकता दिखाते हैं:-(प्रणवः) उस परमेश्वर का वाचक ओम् शब्द ही (धनुः) उस लक्ष्य के बींधने में धनुष (आत्मा,हि) जीवात्मा ही (शर) बाण और (तत्,ब्रह्म,लक्ष्यम्,उच्यते) वह ब्रह्म लक्ष्य कहा जाता है। ऐसी दशा में (अप्रमत्तेन) अप्रमादी होकर ध्यानादि साधनों में तत्पर रहते हुए मनुष्य को (वेद्धव्यम्) लक्ष्य मारना चाहिये बींधकर (शरवत्) लक्ष्य में लगे बाण के तुल्य (तन्मयः) तदाकारवृत्ति वाला (भवेत्) होवे ॥

भा०-जैसे बाण लक्ष्य में प्रवेश करता वैसे ध्यानादि उपाय से सूक्ष्म हुई बुद्धि जिज्ञासु को ब्रह्म में प्रविष्ट करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमो-
तं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः । तमेवैकं

जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ॥ ५ ॥

अस्मिन् । द्यौः । पृथिवी । च । अन्तरिक्षम् । ओतम् । मनः । सह । प्राणैः । च । सर्वैः । तम् । एव । एकम् । जानथ । आत्मानम् । अन्याः । वाचः । विमुञ्चथ । अमृतस्य । एषः । सेतुः ॥ ५ ॥

अ०—पुनरपि तस्य स्वरूपं निरूप्यते (अस्मिन्) परमात्मनि (द्यौः) सूर्य्यादिलोकः (पृथिवी) (अन्तरिक्षम्, च) वायुमेघादीनामाधारश्च (सर्वैः) (प्राणैः, सह) (मनः, च) सर्वेन्द्रियैः सार्द्धं मनोपि (ओतम्) सूत्रे मणिगणाइवाश्रितम् (एषः) योऽसौ (अमृतस्य) सर्वदुःखराहित्यस्य प्राप्तये (सेतुः) संसारसागरादुत्तरणहेतुः (तम्, एव, एकम्) अद्वितीयम् (आत्मानम्) परमात्मानम् (जानथ) जानीत (अन्याः) परमार्थापेक्षया भिन्नाः सांसारिकसुखप्रतिपादिकाः (वाचः) (विमुञ्चथ) परित्यजत ॥

भा०—इतः पूर्वं लक्ष्यवेधनरूपं ज्ञानं प्रस्तुतं तच्च लक्ष्यं कियदस्तीति वक्तुमुपक्रमते—यद्हि सांसारिकलक्ष्यवत्तत्परिच्छिन्नमस्ति किन्तु सूर्यचन्द्रपृथिव्यादिकं सर्वं जगद्यस्यैकदेशे वर्त्तते तदेवं बृहल्लक्ष्यमस्ति तस्य प्राप्तिरपि तादृशेनैवोपायेन भवितुमर्हति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—फिर भी उस परमेश्वर के स्वरूप का निरूपण करते हैं (अस्मिन्) इस परमेश्वर में (द्यौः) सूर्य्यादि लोक (पृथिवी) पृथिवी (अन्तरिक्षम्) वायु और मेघादि के ठहरने का मध्य अवकाश तथा (सर्वैः) सब (प्राणैः, सह) इन्द्रियों के सहित (मनः,च) मन भी (ओतम्) सूत में मूंगा के तुल्य लगा है (एषः) जो यह (अमृतस्य) सर्व दुःखों से छूटने के लिये (सेतुः) संसार समुद्र से पार होने का कारण है (तम्) (एव) (एकम्) उसी एक (आत्मानम्) परमात्मा को (जानथ) जानो और (अन्याः) परमार्थ से भिन्न विरुद्ध केवल संसार के भोगों को कहने वाली (वाचः) वाणियों को (विमुञ्चथ) छोड़ो ॥

भा०—इस से पूर्व लक्ष्य की प्राप्तिरूप ज्ञान का प्रसङ्ग है। अब वह लक्ष्य कितना बड़ा है? इस बात को जताते हैं—संसारी लक्ष्यवस्तुओं के तुल्य वह परिच्छिन्न नहीं किन्तु सूर्य्य चन्द्रमा और पृथिवी आदि इस के एक देश में वर्त्तमान हैं वह ऐसा बड़ा अनन्त लक्ष्य है उस की प्राप्ति भी वैसे ही बड़े उपाय से हो सकती है ॥ ५ ॥

अराइव रथनाभौ संहताइव नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति
वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ ६ ॥

अराःऽइव । रथनाभौ । संहताःऽइव ।
नाड्यः । सः । एषः । अन्तः । चरते । बहुधा । जायमानः । ओम् । इति । ध्यायथ ।
आत्मानम् । स्वस्ति । वः । पाराय । तमसः । परस्तात् ॥ ६ ॥

अ०—(यत्र) यस्मिन् हृदये यथा (रथनाभौ) रथचक्रस्य मध्यभागे (अराइव) इतस्ततः काष्ठानि संयोज्यन्ते तथा (नाड्यस्संहताः) एकीभूताःसन्ति तत्र योगिभिरुपलभ्यमानः (बहुधा,जायमानः) कर्म्मोपासनाज्ञानयोगाद्युपायैः प्रसिद्धिम्प्राप्यमाणः (सः,एषः,अन्तश्चरते) सर्वप्राणिनिकायेषु विचरतितम् (वः) युष्माकम् (पाराय) दुःखसागरात् तारणाय (स्वस्ति) कल्याणरूपम् (तमसः) अन्धकारात् (परस्तात्) पृथग्भूतम् (आत्मानम्) सर्वत्र व्याप्तम् (ओमित्येवम्) ओमितिवाचकशब्दालम्बनेन यूयम् (ध्यायथ) चिन्तयत ॥

भा०—इतः पूर्वमन्त्रे ज्ञेयस्यात्मनोऽनन्तत्वमुक्तम् । तत्र परिच्छिन्नस्य जीवात्मनः प्रवृत्तिः कथं स्यात्-इत्युच्यते—हृदयान्तर्वर्त्तिनीनाड़ीमार्गेण याश्चेतोवृत्तयो बहिर्निस्सरन्तिता अन्तर्निरुद्ध्य बहुकालं ध्यानेनात्मोपलभ्यते ६

भाषार्थः—(यत्र) जिस हृदय में (रथनाभौ) जैसे रथ के पहिये की पुट्ठी पर (अराइव) इधर उधर से लकड़ी जोड़ी जाती हैं वैसे (नाड्यः) नाड़ी (संहताः) नाभिचक्र में मिली हैं उसीहृदय में योगी लोग जिस को प्राप्त होते हैं (बहुधा, जायमानः) कर्म्म उपासना और ज्ञान योगादि अनेक प्रकार के उपायों से हृदय में प्रसिद्धि को प्राप्त होता हुआ (सः,एषः) वह परमेश्वर (अन्तश्चरते) सब प्राणियों के हृदयों में साक्षीरूप हो कर विचरता है उस (वः) तुम लोगों को (पाराय) दुःख सागर से पार होने के लिये (स्वस्ति) कल्याणरूप (तमसः) अन्धकार से (परस्तात्) परे (आत्मानम्) सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर का (ओमित्येवम्) ओम् इस वाचक शब्द के अवलम्ब से तुम (ध्यायथ) ध्यान करो ॥

भा०—इस से पूर्व मन्त्र में जानने योग्य आत्मा का अनन्त होना कहागया है उस में परिच्छिन्न जीवात्मा की प्रवृत्ति कैसे हो इस लिये थोड़े अवकाश में प्राप्त होसकना इस मन्त्र में दिखाया है—अर्थात् हृदय में रहने वाली नाड़ियों के मार्ग से जो चित्त की वृत्तियां इन्द्रियों द्वारा बाहर निकलती हैं उन को भीतर रोक कर बहुत कालतक नित्य नियम पूर्वक ध्यान करने से परमात्मा प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

यः सर्वज्ञः सर्ववित्यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः। मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति॥७॥

यः। सर्वज्ञः। सर्ववित्। यस्य। एषः। महिमा। भुवि। दिव्ये। ब्रह्मपुरे। हि। एषः। व्योम्नि। आत्मा। प्रतिष्ठितः। मनोमयः। प्राणशरीरनेता। प्रतिष्ठितः। अन्ने। हृदयम्। सन्निधाय। तद्विज्ञानेन। परिपश्यन्ति। धीराः। आनन्दरूपम्। अमृतम्। यत्। विभाति॥७॥

अ०—(धीराः) योगाभ्यासतत्पराः पुरुषाः (मनोमयः) विषयाकारान्तःकरणवृत्तिषु तदाकारतामापन्नः (प्राणशरीरनेता) इन्द्रियशक्तीनां शरीरस्य च नायकः (हृदयम्) (सन्निधाय) आश्रित्य (अन्ने) अन्ननिमित्तेन (प्रतिष्ठितः) शरीरेऽवस्थितो यो जीवात्माऽस्ति (तद्विज्ञानेन) तस्य विज्ञानपुरःसरम् (यत्) (आनन्दरूपम्) (अमृतम्) कालत्रयेऽपि मरणधर्म्मरहितम् (विभाति) सर्वं प्रकाशयति तत् (परिपश्यन्ति) परितः सर्वतो दिक्षु व्याप्तं हृदये पश्यन्ति किम्भूतः स परमात्मा (यः) (सर्वज्ञः) सर्वं चराचरं याथातथ्येन जानाति (सर्ववित्) सर्वस्मिन् चराचरे विद्यते सर्वं वा विन्दति (यस्य) (एषः) (भुवि) (महिमा) सर्वलोकलोकान्तराद्दीनां कार्य्यवस्तूनां स्वस्वनियमेनाहर्निशं प्रवृत्तिरेव महत्त्वसूचिका (एषः) आत्मा (दिव्ये) निर्मले (व्योम्नि) अवकाशे (ब्रह्मपुरे) ब्रह्मरन्ध्रे (हि) (प्रतिष्ठितः) निश्चयेनावस्थितो ध्यायिभिस्तत्त्वैवोपलभ्यते ॥

भा०—यद्यपि सर्वस्य ज्ञाता परमेश्वरः सर्वत्र व्याप्तोऽस्ति तथापि निर्मलदर्पणे रूपमिव प्रबलोपायैः शुद्धान्तःकरणएवोपासकैः प्राप्यते । अस्य प्राप्तेः पूर्वं शरीरेन्द्रियादीनामधिष्ठातुर्विषयासक्तस्य स्वस्यात्मनो विज्ञानं कार्य्यम् । नहि स्वस्वरूपेऽविज्ञाते कस्यचित् परमात्मनो ज्ञानं भवितुं शक्यम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(धीराः) योगाभ्यास करने में तत्पर पुरुष जो (मनोमयः) विषयाकार अन्तःकरण की वृत्तियों में तदाकारताको

प्राप्त हुआ (प्राणशरीरनेता) इन्द्रियों और शरीर को अपने २ कार्य में चलाने वाला (हृदयम्) हृदय का (सन्निधाय) आश्रय कर के (अत्र) अत्ररूप निमित्त से (प्रतिष्ठितः) शरीर में स्थित हुआ जीवात्मा है (तद्विज्ञानेन) उस को जानने पूर्वकही (यत्) जो (आनन्दरूपम्) आनन्तस्वरूप (अमृतम्) तीनों काल में न मरने वाला परमेश्वर (विभाति) सब को प्रकाशित करता है उस को (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं अर्थात् सब क्रियाओं में व्याप्त अपने हृदय में मानते हैं वह परमेश्वर कैसा है कि (यः, सर्वज्ञः) जो सब चर अचर संसार को यथार्थरूप से जानता है (सर्ववित्) सब चराचर में सदा विद्यमान वा सब को प्राप्त (यस्य) जिस की (एषः) यह (भुवि) पृथिवी पर प्रसिद्ध (महिमा) सब लोकलोकान्तरादि का अपने २ नियम से दिन रात कार्य में प्रवृत्ति होना रूप महिमा है (एषः) यह आत्मा (दिव्ये) निर्मल (व्योम्नि) अवकाश (ब्रह्मपुरे) ब्रह्मरन्ध्र नाड़ी में (हि) ही (प्रतिष्ठितः) निश्चय कर स्थित है अर्थात् उपासकों को वहीं प्राप्त होता है ॥

भा०—यद्यपि सब का ज्ञाता परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त है तो भी निर्मल दर्पण में जो स्पष्टरूप दीख पड़ने के तुल्य प्रबल उपायों से शुद्ध किये अन्तःकरण में ही उपासकों को प्राप्त होता है। इस की प्राप्ति से पहिले शरीर और इन्द्रियों के अधिष्ठाता विषयों में आसक्त अपने आत्मा का ज्ञान करना चाहिये क्योंकि अपना ज्ञान हुए विना किसी को परमात्मा का ज्ञान नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ ८ ॥

भिद्यते । हृदयग्रन्थिः । छिद्यन्ते । सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते । च । अस्य । कर्माणि । तस्मिन् । दृष्टे । परावरे ॥ ८ ॥

अ०—इतः पूर्वं लक्ष्यवेधनदृष्टान्तेन ब्रह्मज्ञानस्योपायो दर्शितः । तत्र संजातब्रह्मज्ञाने मनुष्ये किं लक्ष्यास्तीत्युच्यते (तस्मिन्) इन्द्रियागोचरे परोक्षे (परावरे) परं सर्वेन्द्रियविषयादिभ्यः पृथग्भूतं शरीरत्रयसम्बन्धवर्जितं निर्गुणमवरं सृष्टिकर्तृत्वादिगुणान्वितं सगुणं तस्मिन्नुभयविधे ब्रह्मणि (दृष्टे) जिज्ञासुना साक्षात्कृते सति (अस्य) ब्रह्मज्ञानिनः (हृदयग्रन्थिः) हृदिस्था भोगवासना (भिद्यते) ग्रन्थिरिव विमुच्यते (सर्वसंशयाः) सर्वसन्देहाः (छिद्यन्ते) नश्यन्ति तेन चेतः समाहितं भवति (च) (कर्माणि) शुभाशुभमिश्राणि भोगोत्कण्ठया क्रियमाणानि (क्षीयन्ते) क्षीणानि भवन्ति ॥

भा०—यदा मनुष्यः प्रत्यहं यौगाभ्यासेन ब्रह्मज्ञाने प्रयतते तदा समाधौ परमात्मानं साक्षात्कृत्वा वासनारूपेण बुद्धौ स्थिराः कामनास्तासां हेतूनि शुभाशुभमिश्राणि कर्माणि वासनाजन्यांश्च सर्वान्संसन्देहांश्च समूलघातं हन्ति तदानीं सर्वबाधाविनिर्मुक्तो निरुपद्रवः शान्तस्तिष्ठति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—इस से पूर्व लक्ष्य वेधन के दृष्टान्त से ब्रह्मज्ञान का उपाय दिखाया है उस में जिस मनुष्य को ब्रह्मज्ञान हो जाता है उस में क्या चिन्ह है सो कहते हैं—(तस्मिन्) उस इन्द्रियों से

अथात्र परोक्ष (परावरे) सब इन्द्रिय और विषयों से पृथक् तथा स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों के सम्बन्ध से रहित निर्गुण-पर और सृष्टि कर्तृत्व आदिगुणों से युक्त सगुण अवर इस दोनों प्रकार के ब्रह्म के (दृष्टे) जिज्ञासु पुरुष ने साक्षात् किये पर (अस्य) इस ब्रह्मज्ञानी की (हृदयग्रन्थिः) हृदय में स्थित वासनारूप गांठ (भिद्यते) खुल जाती (सर्वसंशयाः) सब सन्देह (छिद्यन्ते) छिन्नभिन्न हो जाते जिस से चित्त में समाधान स्थिरता होती (च) और (कर्माणि) फल भोग की अभिलाषा से किये जानेवाले शुभ अशुभ मिले हुए कर्म (क्षीयन्ते) नष्ट हो जाते हैं ॥

भा०-जब मनुष्य प्रतिदिन ब्रह्मज्ञान होने के लिये योगाभ्यास द्वारा प्रयत्न करता है तब समाधि में परमेश्वर को साक्षात् जानकर वासनारूप से बुद्धि में स्थिर भोग की कामना, उन के कारण, शुभ अशुभ मिले हुए कर्म और वासना से होने वाले सब सन्देहों को निर्मूल नष्ट कर देता है उस समय सब बाधाओं से छूट कर निरुपद्रव शान्त हो जाता है ॥ ८ ॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् । तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ ९ ॥

हिरण्मये । परे । कोशे । विरजम् । ब्रह्म । निष्कलम् । तत् । शुभ्रम् । ज्योतिषाम् । ज्योतिः । तत् । यत् । आत्मविदः । विदुः ॥ ९ ॥

अ०—(परे) बाह्यापेक्षया परभूते (हिरण्मये)

ज्ञानप्रकाशस्वरूपे (कोशे) अन्तःस्थे हृदयावकाशे (यत्) (विरजम्) अविद्यारजोगुणादिदोषमलैर्विरहितम्(निष्कलम्) कलाभिरवयवैर्निर्गतं निरवयवम् (ब्रह्म) सर्ववस्तुभ्यो महदात्मतत्त्वमस्ति (तत्) (शुभ्रम्) शुद्धम् (तत्) (ज्योतिषाम्) मनआदीनां प्रत्यगात्मस्थसुखदुःखादिप्रकाशकानामग्न्यादीनांबाह्यवस्तुप्रकाशकानामपि (ज्योतिः) प्रकाशकमिति (आत्मविदः) आत्मानं जीवात्मानं परमात्मानं च विदन्ति तत्त्वतो जानन्ति ते (विदुः) जानन्ति नतान्ये विषयभोगासक्ता ज्ञातुमर्हन्ति ॥

भ०—अस्मिन्नेव हृदयावकाशे ज्ञानप्रकाशमयेऽसीरिव कोशे शुद्धं सनातनमपरिच्छिन्नं निर्मलं निष्पापं निरञ्जनं प्रकाशकानामपि प्रकाशकं योगाभ्यासतत्परैः शुद्धात्मान्तःकरणैः शान्तैर्लौकिकसुखभोगाद्विरक्तमनस्कैर्विद्वद्भिरेव ज्ञायते नतु तद्विपरीतैरिति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(परे) बाहिरी वस्तु की अपेक्षा शरीर के भीतर (हिरण्मये) ज्ञान प्रकाशस्वरूप (कोशे) भीतरी हृदय के अवकाश में (यत्) जो (विरजम्) अविद्या वा रजो गुण आदि दोषरूप मलों से रहित (निष्कलम्) निरवयव (ब्रह्म) सब वस्तुओं से बड़ा आत्मतत्त्व है (तत्) वह (शुभ्रम्) शुद्ध (तत्) और वह (ज्योतिषाम्) सुख दुःखादि के प्रकाशक भीतर रहने वाले मन आदि और बाहिरी वस्तुओं के प्रकाशक अग्नि आदि का भी (ज्योतिः) प्रकाशक है ऐसा (आत्मविदः) जीवात्मा परमात्मा को तत्त्व से जानने वाले विद्वान् (विदुः) जानते हैं किन्तु अन्य विषय सम्बन्धी भोगों में आसक्त पुरुष नहीं जान सकते ॥

भा०—इसी ज्ञान प्रकाशस्वरूप हृदयावकाश (जो तलवार के

सियाने के तुल्य बना है) में अपरिच्छिन्न विभु शुद्ध सनातन निष्पाप निर्मल निरञ्जन प्रकाशकों का भी प्रकाशक ब्रह्म को लौकिक सुख भोगों से जिन का मन विरक्त हो गया योगाभ्यास में तत्पर शुद्धान्तःकरण वालेशांन्ति शील विद्वान् लोग जानते हैं। किन्तु इन से विपरीत लोग नहीं जान सकते ॥ ९ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१०॥

न। तत्र। सूर्यः। भाति। न। चन्द्रतारकम्। न। इमाः। विद्युतः। भान्ति। कुतः। अयम्। अग्निः। तम्। एव। भान्तम्। अनुभाति। सर्वम्। तस्य। भासा। सर्वम्। इदम्। विभाति ॥ १० ॥

अ०—(तत्र) तस्मिन्ब्रह्मणि (न) (सूर्यः) (न, चन्द्रतारकम्) चन्द्रश्च तारकाश्चेति द्वन्द्वएकवद्भावः (भाति) (इमाः) प्रत्यक्षाः (विद्युतः) चाक्षुषतेजोऽभिभावुका अपि (न, भान्ति) तर्हि (अयम्, अग्निः, कुतः) प्रत्यक्षः पार्थिवोऽग्निः कथं भायात् किन्तु (तम्, एव, भान्तम्) प्रकाशयन्तम् (सर्वम्) सूर्यादिकम् (अनुभाति) तद्दत्तप्रकाशसम्प्राप्यैव प्रकाशते (तस्य) परमेश्वरस्य (भासा) दीप्त्या

(इदम्,सर्वम्) सूर्यादिकम्(विभाति) विस्पष्टतया प्रकाशते॥

भा०—यदिदं प्रकाशकं सूर्यादि जगत्प्रत्यक्षतयोपलभ्यते तद्विभाति तेषु च स्वतः प्रकाशो नास्ति किन्तु परमात्मा तान् सूर्यादीन् भाति स्वदत्तेन तेजसा प्रकाशयति सूर्यादयश्च तं प्रकाशयितुमशक्ताः। तस्य ततोधिकतेजस्कत्वात्। अतएव ब्रह्मज्ञानोपायेषु सूर्यादेः प्रकाशस्योपयोगो नापेक्षतेऽपितु बाधकं भवति ॥ १० ॥

भाषार्थः—(तत्र) उस ब्रह्म में (न,सूर्यः) न सूर्य (न,चन्द्रतारकम्) न चन्द्रमा और तारे (भाति) प्रकाश करते तथा (इमाः) ये प्रत्यक्ष चमकने और (विद्युतः) तेज सम्बन्धी प्रकाश को दबाने वाली भी बिजुलीं (न,भान्ति) प्रकाश नहीं करती तो (अयम्) यह पृथिवी पर प्रसिद्ध भौतिक (अग्निः) अग्नि (कुतः) कहां से प्रकाश करे क्योंकि सूर्य का प्रकाश वा तेज अग्नि से प्रबल है और भौतिक अग्नि का कारण भी सूर्य है जब उस में कारण का प्रकाश नहीं पहुंचता तो कार्य का क्या पहुंचे गा किन्तु (तमेव,भान्तम्) उसी प्रकाशमान हुए के पीछे (सर्वम्) सब सूर्यादि (अनुभाति) उस के दिये प्रकाश को पाकर ही प्रकाशित होते हैं (तस्य) उस परमेश्वर की (भासा) दीप्ति से (इदम्,सर्वम्) यह सब सूर्यादि (विभाति) प्रत्यक्ष प्रकाश करते हैं॥

भा०—जो यह सब का प्रकाशक सूर्यादि जगत् प्रत्यक्षता से प्राप्त होता वही प्रकाशित है उन में अपना स्वतःप्रकाश नहीं किन्तु परमात्मा उन सूर्यादि को अपने दिये तेज से प्रकाशित करता है और सूर्यादि उस को प्रकाशित नहीं कर सकते क्योंकि परमेश्वर उन सब से अधिक तेज वाला है इसी से ब्रह्मज्ञान के उपायों में सूर्यादि के प्रकाश का उपयोग अपेक्षित नहीं किन्तु नेत्र द्वारा देखने से ध्यान बटकर बाधा होती है ॥ १० ॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ११

ब्रह्म। एव। इदम्। अमृतम्। पुरस्तात्। ब्रह्म। पश्चात्। ब्रह्म। दक्षिणतः। च। उत्तरेण। अधः। च। ऊर्ध्वम्। च। प्रसृतम्। ब्रह्म। एव। इदम्। विश्वम्। इदम्। वरिष्ठम्॥ ११॥

अ०—ज्ञानिनां बुद्धौ (इदम्) प्रत्यक्षम् (अमृतम्) अविनश्वरम् (पुरस्तात्) समक्षे (ब्रह्म,एव) अस्ति। अन्यच्च सर्वं जगन्नश्वरमेव तैर्विज्ञायते। तैः स्वस्य (पश्चात्) (ब्रह्म) (दक्षिणतः) (उत्तरेण,च,अधः,च,ऊर्ध्वम्,च) ब्रह्मैव स्थितमनुभूयते दृश्यते च प्रतिक्षणं तस्मिन्नेव चेतसो लग्नत्वात् (इदम्,विश्वम्) सर्वम् (वरिष्ठम्) सर्वोत्तमं ब्रह्मैवास्ति जगत्स्थं सर्वं वस्तुजातं वरिष्ठावरिष्ठमिश्रमस्ति नहि केवलम् वरिष्ठं किमप्यस्ति (इदम्) प्रत्यक्षम् (ब्रह्म,एव) (प्रसृतम्) नतु तद्रिक्तमपि प्रसृतमस्ति तदपेक्षया सर्वस्याल्पत्वात्॥

भा०—ब्रह्मज्ञानिनां चेतस्सदा ब्रह्मण्येव रमतेऽतस्ते सर्वदिक्षु सर्वदा सर्वथा सर्वावस्थासु सर्वस्मादुत्तमं ब्रह्मैव

पश्यन्ति ध्यायन्ति च नान्यत्पश्यन्ति ध्यायन्ति वा प्रयोजनाभावात् ॥ ११ ॥

भाषार्थः—ज्ञानियों की बुद्धि में (इदम्) यह प्रत्यक्ष (अमृतम्) अविनाशी (पुरस्तात्) सामने (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही विद्यमान है तथा अन्य सब जगत् उन को नाशवान् ही दीखता है। उन को अपने (पश्चात्) पीछे (दक्षिणतः) दाहिनी ओर (उत्तरेण) बाईं ओर (च) तथा (अधः) नीचे (च) तथा (ऊर्ध्वम्) ऊपर (च) और सब ओर (ब्रह्म) ब्रह्म ही स्थित जान पड़ता है वा दीखता है क्योंकि उन लोगों का चित्त प्रतिक्षण उसी में लगा रहता है (इदम्, विश्वम्) यह सब (वरिष्ठम्) सर्वोत्तम ब्रह्म ही है जगत् में जितना पदार्थ है उस में अच्छा बुरा मिला रहता किन्तु केवल उत्तम ब्रह्म ही है (इदम्) यह प्रत्यक्ष (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (प्रसृतम्) फैला है उस के तुल्य फैलाव किसी का नहीं क्योंकि उस की अपेक्षा पृथिवी आकाशादि भी सब अल्प हैं ॥

भा०—ब्रह्मज्ञानियों का चित्त सदा ब्रह्म में ही रहता है इस से वे सब काल में सब दिशाओं में सब प्रकारों से सब अवस्थाओं में सब से उत्तम ब्रह्म को ही देखते वा जानते हैं किन्तु प्रयोजन न रहने से अन्य किसी को न देखते न ध्यान भी करते हैं ॥ ११ ॥

इति द्वितीयः खण्डो द्वितीयं मुण्डकं च समाप्तम् ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति १

द्वा। सुपर्णा। सयुजा। सखाया। समानम्। वृक्षम्। परिषस्वजाते। तयोः।

अन्यः । पिप्पलम् । स्वादु । अत्ति । अनश्नन् । अन्यः । अभिचाकशीति ॥१॥

अ०—पूर्वस्मिन् खण्डे मुख्यतया ब्रह्मात्मनएव वर्णनमस्ति तत्र सप्तममन्त्र इदमप्युक्तम्—योऽसौ हृदयं मन्निधायान्ने प्रतिष्ठितः प्राणशरीरनेता जीवात्मास्ति तद्विज्ञानेन तस्य विज्ञानपुरस्सरमेव विद्वांसः परमात्मानं पश्यन्तीति—तदर्थमस्मिन्खण्डे द्वयोरप्यात्मनोर्वर्णनं सहैवारभते सान्निध्यं साधर्म्यं च द्वयोरपि वक्तुमुपक्रमते—(सयुजा) व्याप्यव्यापकसम्बन्धेन घटाकाशाविव सहैव युक्तौ नास्त्यनयोः पृथग्भावः कदाचिदपि (सखाया) समाना ख्यातिः प्रकटतायाः कारणं योगाभ्यासशमदमतितिक्षोपरत्यादिसाधनं ययोस्तौ सखायौ। अन्यत्र कृतमौहार्दौ (सुपर्णा) शोभनं पर्णं पतनं प्रापणं ययोस्तौ पक्षान्तरे दर्शनीयपक्षौ पक्षिणौ (द्वा) जीवात्मपरमात्मानौ (समानम्) एकम्(वृक्षम्) वृश्च्यते छिद्यते उत्पन्नं सत्पादपइवं नश्यति तच्छरीरं प्रकृतिस्थानीयं कार्यकारणरूपं भोग्यं जड़ं जगच्च (परिषस्वजाते) परितः सर्वतः सक्तौ कृतसंगौ वृक्षमारुह्य स्थितावित्यर्थः (तयोः) द्वयोरात्मनोर्मध्ये (अन्यः) एको जीवात्मा (स्वादु) स्वादिष्ठमभिलषितं कर्मणाम्(पिप्पलम्) फलमन्यच्च वृक्षफलम्(अत्ति) भक्षयति (अन्यः) तस्माज्जीवात्मतः स्वरूपतो भिन्नः परमात्मा (अनश्नन्) शुभाशुभकर्मभ्यस्तद्विपाकेभ्यश्चापरामृष्टः कर्मफलमभुञ्जानएव (अभिचाकशीति) साक्षि-

त्वेन सर्वं शुभाशुभं पश्यति सर्वस्य कृत्यं याथाथ्येन ज्ञात्वा तदनुकूले सुखदुःखफले ददाति ॥

भा०-अत्र रूपकालङ्कारेणात्मद्वयस्य वर्णनम् । ऋग्वेदेपीदृशएवायंमन्त्रः । जगति द्वावेव पदार्थौस्तः । भोक्ता भोग्यंचेतनं जडं पुरुषः प्रकृतिश्चेति ययोर्नाम्नी अभिधौ येते तत्र चेतनौ द्वौ स्तो जीवात्मा परमात्मा च तौ द्वावप्यात्मानौ सर्गस्थितिप्रलयदशासु परिणताया वृक्षरूपायाः प्रकृतेर्जड़स्याश्रयं कृत्वाऽवस्थितौ तयोः परमात्मा स्वाभाविकशक्त्यैवास्य सर्गस्थितिलयान् कुर्वाणः सर्वत्र व्याप्तः सर्वान्तर्यामितया सर्वसाक्षीभूतः शुभाशुभकर्माणि तद्विपाकांश्चानुभवन्नेव जन्ममरणजराव्याध्यादिवर्जितः सर्ववाधाविनिर्मुक्तो जीवात्मस्वरूपतः सदैव भिन्नः सर्गस्थितिलयदशासु प्रकृतिरूपं वृक्षमाश्रयते । द्वितीयो जीवात्मा कर्माणि तद्विपाकांश्चानुभवन् जन्ममरणजराव्याध्यादिजन्यबाधाश्च भुञ्जानः प्रकृतिकार्यमाश्रयते । इत्थं द्वयोर्ज्ञानं मनुष्येण सम्पाद्यम् । स्वात्मानं बद्धं ज्ञात्वैव मुक्तेर्यत्नः कर्तुं शक्यते नान्यथा ॥ १ ॥

भाषार्थः—इस से पहिले द्वितीय मुण्डक के द्वितीय खण्ड में मुख्यकर परमेश्वर का ही वर्णन है उस खण्ड के सातवें मन्त्र में यह भी कहा है कि जो अन्न के मिलने से हृदय में स्थित प्राण और शरीर का स्वामी जीवात्मा है उस को जान कर ही विद्वान् लोग परमात्मा को जानते हैं । इस लिये इस तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड में दोनों आत्मा का वर्णन आरम्भ करते और दोनों की समीपता वा मेल दिखाते हैं (सयुजा) व्याप्य व्यापक सम्बन्ध

से घटादि और आकाश के तुल्य सदा इकट्ठे रहने वाले अर्थात् इन का वियोग कभी नहीं होता (सखाया) योगाभ्यास, शम, दम, तितिक्षा और वैराग्यादि दोनों के जानने के एक ही साधन हैं तथा द्वितीय पक्ष में परस्पर मित्र (सुपर्णा) जिन की प्राप्ति में सुख ही है ऐसे द्वितीय पक्ष में अच्छे पंखों वाले (हा) दो जीवात्मा परमात्मा वा पक्षी (समानम्) एक (वृक्षम्) उत्पन्न होकर नष्ट होने वाले प्रकृतिस्थानी शरीर वा कार्य कारणरूप भोग्य जड़ जगत् को द्वितीय पक्ष में वृक्ष को (परिषस्वजाते) सब ओर से प्राप्त हैं अर्थात् इस वृक्ष पर ही रहते हैं (तयोः) उन दोनों आत्मा वा पक्षियों में से (अन्यः) एक जीवात्मा वा पक्षी (स्वादु) अपनी इच्छा से स्वादिष्ठ कर्मों के वा वृक्ष के (पिप्पलम्) फलको (अत्ति) खाता है (अन्यः) और द्वितीय उस जीवात्मा के स्वरूप से भिन्न परमात्मा वा द्वितीय पक्षी (अनश्नन्) कर्म और उन के फल का अनुभव न करता हुआ वा वृक्ष फल का त्यागी हुआ (अभिचाकशीति) साक्षीरूप से सब शुभ अशुभ कर्मों को देखता है और यथार्थ जान कर कर्मों के अनुकूल सुख दुःख फल देता है ॥

भा०—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार के साथ दोनों आत्मा का वर्णन है। और यह मन्त्र ऐसाही ऋग्वेद में भी आता है। जगत् में दो ही पदार्थ हैं जो भोक्ता, भोग्य, जड़, चेतन प्रकृति और पुरुष नामों से कहे जाते हैं। उन में चेतन के दो भेद हैं एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। वे दोनों आत्मा उत्पत्ति स्थिति और प्रलय दशा में परिणाम को प्राप्त होने वाली वृक्ष रूप जड़ प्रकृति का आश्रय कर स्थिति रहते हैं। उन दोनों में से परमेश्वर स्वाभाविक अपनी शक्ति से ही इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय को करता हुआ सर्वत्र व्याप्त सब का अन्तर्यामी होने से सब का साक्षी हुआ शुभअशुभ कर्म और उन के फलों का अनुभव न कर के जन्म, मरण, वृद्धावस्था और सब व्याधियों से रहित सब दुःखों से छूटा हुआ और जीवात्मा के स्वरूप से सदा भिन्न उत्पत्ति स्थिति और प्रलय तीनों जगत् की अवस्थाओं में प्रकृतिरूप वृक्ष का

आश्रय करता है। और द्वितीय जीवात्मा कर्मों तथा उन के फलों का अनुभव करना तथा जन्म, मरण, वृद्धावस्था और रोगादि से होने वाले दुःखों को भोगना इत्यादि प्रकृति के कार्य शरीरादि जगत् का आश्रय करता है इस प्रकार दोनों का ज्ञान मनुष्य को करना चाहिये क्योंकि अपने आत्मा को बद्ध जान कर ही मुक्ति का यत्न करना बन सकता है। अन्यथा यदि जीवात्मा को बद्ध न मानें किन्तु नवीन वेदान्तियों के तुल्य जीव ब्रह्म को स्वरूप से एक माना जावे तो मुक्ति का उपाय करना ही निरर्थक है क्योंकि ब्रह्म तो मुक्त ही है ॥ १ ॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ २ ॥

समाने । वृक्षे । पुरुषः । निमग्नः । अनीशया । शोचति । मुह्यमानः । जुष्टम् । यदा । पश्यति । अन्यम् । ईशम् । अस्य । महिमानम् । इति । वीतशोकः ॥ २ ॥

अ०—(समाने) एकस्मिन् जड़े (वृक्षे) नश्वरे शरीरादौ जगति (पुरुषः) जीवात्मा (निमग्नः) रागद्वेषादिभिर्लिप्तो वासनारश्मिभिर्बद्धः (मुह्यमानः) मोहेनाविद्यादिक्लेशेन ग्रस्तः (अनीशया) दुःखपाशान्निस्सर्त्तुं

मशक्तः (शोचति) भार्यापुत्रौ मे नष्टौ धनं मे ८पहृतं किं करोमि क्व गच्छामि नास्ति मम सामर्थ्यं यदेतस्मादुःखसागरात्पारं गच्छेयमिति शोकस्थानसहस्रैर्व्याकुलो भवति (यदा) सत्सङ्गतिविद्यायोगाभ्यासादिसाधनानि सेवमानः (अन्यम्) स्वतो भिन्नं निश्शोकम् (जुष्टम्) ज्ञानिभिर्योगिभिश्च सेवितम् (ईशम्) सर्वशक्तिमन्तम् (अस्य) ईशस्य (महिमानम्) जगद्रूपं महत्कर्म च (पश्यति) ध्यानादिना साक्षात्करोति (इति) एवंप्रकारेण (वीतशोकः) विगतशोको भवति ॥

भा०—यद्यप्येकस्मिन्नेव कार्ये जगति द्वावेवात्मानौ कृतसम्बन्धौ स्तस्तथापि तयोर्जीवात्मा भोगासक्त्वाच्छोकमोहादिजन्यदुःखमनुभवतीतरश्च परमात्मा शोकादिरहितः । यदा च योगाभ्यासादिना ज्ञानिज्ञेयं परेशं शोकहर्त्तारं साक्षात्करोति तदायं जीवात्मापि शोकमोहादीन् विहाय सुखी भवति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(समाने) एक ही जड़ (वृक्षे) नाशवान् शरीरादि जगत् में (पुरुषः) जीवात्मा (निमग्नः) रागद्वेष आदि से लिप्त और वासनारूप रस्सियों से बँधा (मुह्यमानः) अविद्यादि क्लेशों से ग्रस्त (अनीशया) दुःखरूप फांसी से निकलने में असमर्थ (शोचति) शोचता है कि मेरे स्त्री पुत्र मर गये मेरा धन छिन गया अब मैं क्या करूं ! कहां जाऊं ! इस दुःख सागर से पार होने का मेरा सामर्थ्य नहीं है इत्यादि प्रकार सहस्रों प्रकार की शोक सम्बन्धी विपत्तियों से व्याकुल होता है (यदा) जब सत्संगति विद्या और योगाभ्यासादि साधनों का सेवन करता हुआ (अन्यम्) अपने से भिन्न सब शोकों से रहित (जुष्टम्) ज्ञानि और योगी लोगों से सेवित

(ईशम्) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को और (अस्य) इस ईश्वर की (महिमानम्) जगत् की रचनारूप महिमा को (पश्यति) ध्यान दृष्टि से देखता है (इति) इस प्रकार वह भी (वीतशोकः) सब शोकों से रहित हो जाता है ॥

भा०—यद्यपि एक ही जड़ कार्य जगत् में दोनों ही जीवात्मा परमात्मा सम्बन्ध किये हुए हैं तो भी उन में से जीवात्मा भोग में आसक्त होने से शोक मोहादि से होने वाले दुःख का अनुभव करता और द्वितीय परमात्मा शोकादि से रहित है जब योगाभ्यासादि द्वारा ज्ञानियों से जानने योग्य शोकहर्त्ता परमेश्वर को साक्षात् जान लेता है तब यह जीवात्मा भी शोक मोहादि को छोड़ कर सुखी होता है ॥ २ ॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥

यदा । पश्यः । पश्यते । रुक्मवर्णम्। कर्त्तारम्। ईशम्। पुरुषम् । ब्रह्मयोनिम्। तदा। विद्वान्। पुण्यपापे। विधूय। निरञ्जनः। परमम्। साम्यम्। उपैति ॥ ३ ॥

अ०—पुनस्तदेव पूर्वोक्तं स्पष्टीक्रियते (यदा) यस्मन् योगसमाधिकाले (ब्रह्मयोनिम्) ब्रह्मणो वेदस्य योनिः

कारणम् । शास्त्रयोनित्वादिति ब्रह्मसूत्रस्थैतदेव मूलम् । अस्य जगतः (कर्त्तारम्) निर्मातारम् (पुरुषम्) पूर्णं व्याप्तम् (रुक्मवर्णम्) प्रकाशमयम् (ईशम्) सर्वशक्तिमन्तं परमेश्वरम् (पश्यः) अन्तःकरणवृत्तिभिर्द्रष्टुं समर्थो ज्ञानी मनुष्यः (पश्यते) पश्यति ध्यानदृष्ट्या विजानाति (तदा) सः (निरञ्जनः) शोकमोहरागद्वेषादिभिर्निर्लिप्तः (विद्वान्) (पुण्यपापे) (विधूय) त्यक्त्वा (परमम्) अविद्यादिक्लेशरहित्यं कर्मतद्विपाकैश्चापरामृष्टत्वादिकम् (साम्यम्) समत्वम् (उपैति) प्राप्नोति ॥

भा०-यदा ज्ञानी जनो योगाभ्यासादिसाधनैः सर्वस्य मूलं परमेश्वरं विजानाति तदा स सर्वदुःखानि विहाय परमात्मवन्मुक्तो भवति। तत्रापि परेशो नित्यमुक्तः जीवात्मनश्च मुक्तिरनित्येति भेदोऽनुसन्धेयः ॥ ३ ॥

भावार्थः-फिर भी उसी पूर्वोक्त विषयको स्पष्ट कर कहते हैं-(यदा) जब योग समाधि काल में (ब्रह्मयोनिम्) ब्रह्मनाम वेद के उत्पादक [शास्त्रयोनित्वात्] इस व्यास सूत्र में भी वेद का मूल कारण ब्रह्मको माना है उस सूत्र का यही उपनिषद् का वाक्य मूल है इस जगत् के (कर्त्तारम्) बनाने वाले (पुरुषम्) पूर्णव्याप्त (रुक्मवर्णम्) प्रकाशमय (ईशम्) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को (पश्यः) भीतरी ज्ञान वृत्तियों से देखने में समर्थ ज्ञानी पुरुष (पश्यते) देखता है अर्थात् ध्यान दृष्टि से जानता है (तदा) तब (सः) वह (निरञ्जनः) शोक मोह राग द्वेषादि से पृथक् (विद्वान्) विद्यावान् पुरुष (पुण्यपापे) मिले हुए पाप पुण्यों को छोड़कर (परमम्) अविद्यादि क्लेशों से रहित तथा कर्म और उन की फलभोग सम्बन्धी वासना के संग से वर्जित होनारूप परमात्मा की (साम्यम्) तुल्यताको (उपैति) प्राप्त होता है ॥

भा०-जब ज्ञानी पुरुष योगाभ्यासादि साधनों से सब वस्तुओं वा विद्याओं के मूल कारण परमेश्वर को जानता है तब वह सब दुःखों को छोड़ कर परमात्मा के तुल्य मुक्त होता है तो भी परमात्मा नित्य मुक्त होने से कभी किसी प्रकार के बन्धन में नहीं आता परन्तु जीवात्मा की मुक्ति अनित्य है यह बड़ा भेद भी बना रहता है ॥ ३ ॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति वि-
जानन् विद्वान् भवते नातिवादी ।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष
ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ ४ ॥

प्राणः । हि । एषः । यः । सर्वभूतैः ।
विभाति । विजानन् । विद्वान् । भवते ।
न । अतिवादी । आत्मक्रीडः । आत्म-
रतिः । क्रियावान् । एषः । ब्रह्मविदाम् ।
वरिष्ठः ॥ ४ ॥

अ०-(यः, एषः) योगिभिः लब्धप्रत्यक्षः (प्राणः) स्वसत्तया सर्वप्राणिनां जीवनहेतुः परमात्मा (हि) एव । प्राणस्तथानुगमादिति व्याससूत्रेणापि प्राणवृत्ति ब्रह्मणो नाम स्थापितम् (सर्वभूतैः) सर्वप्राणिनिकायैः सह सर्वभूतहृद्देशस्थः (विभाति) साक्षिरूपेणान्तर्यामितया स्वनियमैर्वा सर्वं चराचरं प्रकाशयति (विजानन्) ज्ञानी

पुरुषस्तं प्राणम् (विजानन्) (अतिवादी) बहुभाषी (न, भवते) न भवति किन्तु यावत्प्रयोजनं मितमेव वदति सः (एषः) विद्वान् (आत्मरतिः) आत्मनि प्रत्यगात्मविचारे परमात्मनो ध्यानएव रतीरमणं रागः प्रीतिरस्य (आत्मक्रीडः) आत्मन्येव बाह्यसाधनापेक्षा-क्रीडा यस्य । अर्थाद्बाह्यविषयेषु क्रीडां विहायात्मन्येव विहर्त्तुं शीलः । एवं सत्यपि (क्रियावान्) वेदोक्ताग्नि-होत्रादिकर्मसु प्रवृत्तः । एवंभूतो विद्वान् (ब्रह्मविदाम्) ब्रह्मज्ञानिषु (वरिष्ठः) श्रेष्ठः ॥

भा०-सर्वान्तर्यामितया स्वसत्तया सर्वप्राणिनां जीव-नहेतुं सर्वविद्याकर्मनियमधर्मादीनां प्रकाशकं जगदीश्व-रं ज्ञात्वा सर्वविषयेष्विन्द्रियवृत्तीः शिथिलीकृत्य वेदो-क्तानि सर्वोपकारकाणि फलाकाङ्क्षारहितानि धर्म्याणि कर्माणि कुर्वन् बाह्यकर्मफलसुखभोगाभिलाषावृत्तित्या-गेन प्रत्यगात्मविचारे रममाणः पुरुषएव ब्रह्मवित्सु प्रशस्तो गण्यते यः कर्माणि कुर्वाणः कर्मफलैरेव परमा-त्मानं प्राप्तुमिच्छति यश्च कर्माणि विहाय केवले ज्ञान-एव रमते तावुभावपि निकृष्टौ । तथा चोक्तं यजुषश्चत्वा-रिंशत्तमेऽध्याये-अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपास-ते । ततो भूयइव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः । अवा-विद्याया ज्ञानाभावरूपस्य कर्मण उपासका विद्यायाः केवलज्ञानकाण्डस्यैवोपासकाश्चोभयेऽपि निकृष्टाद्गर्हिताः भगवद्गीतासु च बहुशः प्रतिपादितमेतत् । अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः स संन्यासी च योगी च

न निरग्निर्न चाक्रियः। दृत्यादिना तस्मात्सङ्गमेव ज्ञान-कर्मणोः सहैवोपासनम्। फलभोगवासनात्यागएव तु मुक्तेःकारणम्। एवं सति यच्छङ्करस्वामिनाऽग्निहोत्रादिक्रियाणां निरासः प्रदर्शितो नहि स शास्त्रीयराद्धान्तः। पूर्वोक्तप्रकारेण विरोधसत्त्वात्। नहि भोगवासनात्यागे स्वाभाविकरीत्या कर्मणामनुष्ठानमात्मरमणेन साकं विरुध्यते। वैराग्ये च क्रियात्वं न सम्भवति तत्तु क्रियाणामपि त्यागएव। अतः क्रियावानित्यनेन वेदोक्तकर्मकाण्डस्यानुष्ठानवानेव ग्राह्यः॥ ४॥

भाषार्थः—(यः,एषः) जो यह योगियों से प्रत्यक्ष जानागया (प्राणः) अपनी सत्ता से प्राणियों के जीवन का हेतु परमात्मा (हि) एव [प्राणस्तथानुगमात्। इस वेदान्त सूत्र से भी ब्रह्म का ही नाम प्राण माना गया है] (सर्वभूतैः) सब चेतन शरीरों के साथ सब के हृदय में स्थित (विभाति) साक्षीरूप से अन्तर्यामी हो कर अथवा अपने नियमों से सब चराचर जगत् को प्रकाशित करता है (विद्वान्) ज्ञानी पुरुष उस सब के जीवन हेतु परमेश्वर को (विजानन्) जानता हुआ (अतिवादी) बहुत बोलने वाला (न,भवति) नहीं होता किन्तु प्रयोजन के अनुसार थोड़ा ही बोलता है (एषः) यह विद्वान् (आत्मरतिः) भीतरी विचार रूप परमात्मा के ध्यान में ही प्रीति रखने वाला (आत्मक्रीडः) बाहिरी साधनों की अपेक्षा रखने वाली क्रीडा जिस को भीतर आत्मा में ही है ऐसा अर्थात् बाहिरी विषयों में क्रीड़ा [खेल] को छोड़ कर आत्मा में ही विहार करने का स्वभाव रखने वाला ऐसा होने पर भी (क्रियावान् वेदोक्त अग्नि होत्रादि कर्म करने में तत्पर ऐसा विद्वान् (ब्रह्मविदाम्) ब्रह्मज्ञानियों में (वरिष्ठः) श्रेष्ठ माना जाता है॥

भा०-सर्वान्तर्यामी होने से अपनी सत्ता कर के सब प्राणियों को जीवित रखने वाले सब विद्या, कर्म, नियम और धर्मादि के प्रकाशक जगदीश्वर को जान कर सब विषयों से इन्द्रियों की वृत्ति शिथिल कर के वेद में कहे सब के उपकारक धर्मानुकूल फल की आकाङ्क्षा रहित कर्मों को करता हुआ बाहिरी कर्मों के सुख रूप फल के भोग की आशारूप वृत्ति के छोड़ने से भीतरी विचार में रमण वा आनन्द मानता हुआ पुरुष ही ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ माना जाता है। और जो पुरुष कर्मों को करता हुआ केवल कर्म के फलभोग के साथ ही परमात्मा को प्राप्त होना चाहता है तथा जो कर्मों को छोड़ कर केवल ज्ञान में ही तत्पर होता है वे दोनों ही नीच हैं। सो यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में कहा है कि (अन्धन्तमः०) यहां अविद्या शब्द से ज्ञान का अभाव रूप जो कर्म उस के उपासक और विद्या शब्द से केवल ज्ञान काण्ड जिया गया है उस के उपासक दोनों ही नीच दिखाये हैं। इस अंश पर भगवद्गीता में भी बहुत लेख है (अनाश्रितः कर्मफलम्०) कि जो कर्मफल भोग के आश्रय को छोड कर के करने योग्य वेदोक्त कर्म को करता है वही संन्यासी तथा योगी है किन्तु कर्मों के छोड़ देने से कोई संन्यासी वा योगी नहीं हो सकता इत्यादि तिस से सिद्ध हुआ कि ज्ञान और कर्म दोनों का साथ ही सेवन करे उस में फल भोग की वासना का त्याग ही मुक्ति का कारण है। ऐसा होने पर जो श्री शङ्कर स्वामी ने अग्निहोत्रादि क्रियाओं का खण्डन दिखाया है वह शास्त्र के सिद्धान्त से विरुद्ध है क्योंकि उन के पक्ष में पूर्वोक्त प्रकार से विरोध है। और यह भी नहीं हो सकता कि भोग की वासना छोड़ कर स्वाभाविक रीति से किया कर्मों का अनुष्ठान आत्मा में रमण के साथ विरुद्ध पड़ता हो। और वैराग्य में कर्म होना सम्भव नहीं क्योंकि वहां कर्म का भी त्याग ही होगा। इस कारण यहां क्रियावान् शब्द से वेदोक्त कर्म का सेवन करने वाला ही लेना चाहिये ॥ ४ ॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५ ॥

सत्येन । लभ्यः । तपसा । हि । एषः ।
आत्मा । सम्यग्ज्ञानेन । ब्रह्मचर्येण ।
नित्यम् । अन्तःशरीरे । ज्योतिर्मयः ।
हि । शुभ्रः । यम् । पश्यन्ति । यतयः ।
क्षीणदोषाः ॥ ५ ॥

अ०—(यम्) परमात्मानम् (क्षीणदोषाः) क्षीणा नष्टा दोषा रागद्वेषमोहा येषां ते क्षीणदोषा अविद्यादिक्लेशैरपरामृष्टाः (यतयः) इन्द्रियादीनां नियन्तारो योगिनः (पश्यन्ति) ध्यानेनानुभवन्ति सः (अन्तःशरीरे) शरीरस्य मध्ये (ज्योतिर्मयः,हि) ज्योतिर्मयएव न तत्राज्ञानान्धकारस्य लेशोप्यस्ति (शुभ्रः) शुद्धो निर्मलः (एषः,आत्मा) योगिनां प्रत्यक्षः परमात्मा (नित्यम्,सत्येन) प्रात्यहिकसत्यभाषणेन (तपसा) नैत्यिकद्वन्द्वसहनादिलक्षणेन (सम्यग्ज्ञानेन) अविपरीतज्ञानेन यथार्थेन नैत्यिकेनैव (ब्रह्मचर्येण) नित्यमष्टविधमैथुनत्यागेनोपस्थेन्द्रियनियहेण [अत्र नित्यशब्दः प्रत्येकम-

भिसम्बध्यते तेन कादाचित्कसत्यभाषणादिना प्राप्तुम-शक्यः (लभ्यः) प्राप्तव्यः ॥

भा०—यं परमात्मानं शुद्धाः सर्वदोषविवर्जिताः सत्यादिसाधनसम्पन्ना योगिनो ध्यानेनानुभवन्ति तम-न्येऽपि जिज्ञासवः सत्यादिसाधनानां तीव्रसंवेगेनानुष्ठानं कृत्वा स्वस्वान्तःकरणे ज्ञानप्रकाशमयं प्राप्तुमर्हन्ति । नहि साधनैर्विना कश्चिदपि जन्मशतेनापि प्राप्तुमर्हति॥५॥

भाषार्थः-(यम्) जिस परमात्मा को (क्षीणदोषाः) राग द्वेष और मोह रूप दोष जिन के नष्ट हो गये वे अविद्यादि क्लेशों से रहित (यतयः) इन्द्रियादि को नियम में रखने वाले योगी लोग (पश्य-न्ति) ध्यान से देखते हैं वह (अन्तः,शरीरे) शरीर के बीच हृदया-काश में (ज्योतिर्मयः) ज्योतिःस्वरूप (हि) ही अर्थात् उस अज्ञा-नान्धकार का लेश भी नहीं (शुभ्रः) शुद्ध निर्मल (एषः, आत्मा) योगियों को प्रत्यक्ष वह परमात्मा (नित्यम्, सत्येन) प्रतिदिन सत्य बोलने (तपसा) निन्दा स्तुति शीत उष्णादि इन्द्वों के सहनेरूप नित्य किये तप से (सम्यग्ज्ञानेन) नित्य सेवन किये यथार्थ ज्ञान से और (ब्रह्मचर्येण) नित्य आठ प्रकार के मैथुन का त्याग वा उप-स्थ इन्द्रिय के रोकने से [इस मन्त्र में पढ़ा नित्य शब्द प्रत्येक साधन के साथ सम्बन्ध रखता है इसी कारण कभी २ किये सत्य भाषणादि से प्राप्त नहीं हो सकता] (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है

भा०—जिस परमेश्वर का सब दोषों से रहित शुद्ध योगी लोग ध्यान से अनुभव करते हैं अन्य जिज्ञासु भी सत्य आदि साधनों का अत्यन्त वेग से सेवन कर के अपने ही अन्तःकरण में ज्ञान प्रकाशस्वरूप उस ईश्वर को प्राप्त हो सकते हैं । किन्तु साधनों के विना कोई भी सैकड़ों जन्म में भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः । येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ६ ॥

सत्यम् । एव । जयते । न । अनृतम् । सत्येन । पन्थाः । विततः । देवयानः । येन । आक्रमन्ति । ऋषयः । हि । आप्तकामाः । यत्र । तत् । सत्यस्य । परमम् । निधानम् ॥ ६ ॥

अ०—(आप्तकामाः) आप्तः प्राप्तः कामोऽभीष्टवस्तु-र्निर्बाधो नित्यानन्दो यैस्ते (ऋषयः) ज्ञानिनो वेदा-विदः (यत्र) यस्यां दशायाम् (सत्यस्य) सत्यानुष्ठानस्य परमम्) प्रकृष्टम् (निधानम्) अवस्थितिः सीमास्ति-ति यस्मात्परं किमपि सत्यम् (तत्) परमात्मतत्त्वम् न) सत्यभाषणेन सर्वथा सर्वदा मिथ्यात्वत्यागेन क्रमन्ति) उत्कर्षेण सह गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति तादृश-सत्यमेव,जयते) सत्यस्यानुष्ठानेव जयमाप्नोति (न,अ-प्त) नतु मिथ्याभाषणतत्परो यतः (देवयानः) वैदिक-र्मानुष्ठातॄणां गमनाधिकरणः (पन्थाः) मार्गः रया (सत्येन) सत्याचरणेनैव (विततः) विस्तृत" "

भा०—यत्स्वरूपतो विकृतं न भवति तत्सत्यम्। अन्यानि सर्वाणि सत्यानि सापेक्षाणि परमात्मनि तस्या वधिः। अन्यस्मिन्कथमपि किञ्चिदसत्यं स्यान्नतु परेशे तस्मात्सत्याचरणनौकयैव योगिनो दुःखसागरमुत्तीर्य परमात्मानमाप्नुवन्ति सत्याचरणपरिपाटीं ज्ञानिजना वर्द्धयन्ति। सर्वमुक्तिसाधनेषु सत्यमेव प्रथमा श्रेणिः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(आप्तकामाः) सब बाधाओं से रहित निरवानन्द रूप अभीष्ट जिन का सिद्ध हो गया वे (ऋषयः) वेदार्थ ज्ञान से ज्ञानी (यत्र) जिस दशा में (सत्यस्य) सत्य सेवन की (परमम्) सर्वोत्तम (निधानम्) अवस्थिति वा सीमा है जिस से परे अन्य कोई सत्य नहीं (तत्) उस परमात्मतत्त्वस्वरूप को (येन) सब प्रकार सब समय में मिथ्यापन को छोड़ सत्य भाषण से (आक्रमन्ति) उत्तमता के साथ प्राप्त होते हैं वैसे (सत्यमेव, जयते) सत्य का सेवन करने वाला ही जीतता है (न, अनृतम्) किन्तु मिथ्यावादी का कभी जय नहीं होता क्योंकि (देवयानः) वैदिक धर्म का अनुष्ठान करने वाले विद्वान् लोग जिस में चलते हैं ऐसा (पन्थाः) मार्ग (सत्येन) सत्याचरण की परम्परा से ही (विततः) विस्तृत वा प्रचरित हुआ है ॥

भा०—जो स्वरूप से कभी विकारी नहीं होता वही सत्य अन्य सब सत्य सापेक्ष बने रहते हैं किसी की अपेक्षा कोई वि सत्य रहता है परमात्मा में सत्य की अवधि है। यदि अन्य स में किसी प्रकार कुछ असत्य भी हो परन्तु परमेश्वर में अ का लेश भी नहीं। इस कारण सत्याचरणरूप नौका से ही यो लोग दुःखसागर के पार उतर कर परमात्मा को प्राप्त हं ज्ञानी लोग ही सत्याचरण की परिपाटी को बढ़ाते हैं इस मुक्ति के सब साधनों में सत्य ही प्रथम सीढ़ी है ॥ ६ ॥

2327 स्वामी विज्ञानन्द दण्डी